मेक-अप ध्यान आकर्षित करने तथा पढ़नेकी रुचि उत्पन्न करनेके प्रयत्नमें सफल हो रहा है।

प्रधान उप-सम्पादक जब पत्रके मेक-अपका खाका बनाने लगता है, तब अपने अन्य साथियों, विशेषकर समाचार-सम्पादकसे तथा विज्ञापन-व्यवस्थापकसे परामर्श कर लिया करता है। समाचार-सम्पादक उसे बता देता है कि कौन-कौन मुख्य समाचार दिये जा चुके हैं और कौन-कौन अभी और दिये जानेवाले हैं तथा स्थूल रूपसे उनके कितने स्थानमें आनेकी सम्भावना है। विज्ञापन व्यवस्थापक उसके हाथमें उस दिनके अखबारका एक छाया-सा प्रारूप थमा देता है जिसमें इस बातका निर्देश रहता है कि किस पृष्ठके किस हिस्सेमें किस विज्ञापनके लिए कितना स्थान सुरक्षित रखा गया है। कौन-कौनसे फीचर तथा अन्य सामग्री अंकविशेषमें देना है, इसका पता जब मुख्य उपसम्पादकको लग जाता है, तब वह एक खाका-सा बना लेता है। यदि समाचारोंकी स्थितिके कारण आवश्यक हो जाय तो पृष्ठसज्जाकी अपनी मान्यतामें थोड़ा सा हेर फेर करने या फीचर स्थगित कर अन्य पृष्ठादिमें ले जानेमें भी वह नहीं हिचकता।

भारतीय पत्रोंमें समाचार-सम्पादकके ही जिम्मे चित्रोंकी व्यवस्था भी रहती है। फोटोग्राफ तैयार करनेवाली समितियोंसे, दूतावासोंके सूचनाधिकारियोंसे, समाचारपत्रोंको सूचना देनेवाले कार्यालयों, विभिन्न प्रचार-संस्थाओं तथा शौकिया छायाचित्र लेनेवालोंसे वह चित्र एकत्र करता है। प्रथम पृष्ठका मुख्यचित्र, यथासम्भव सम्पादकीय विभागके फोटोग्राफरका ही लिया हुआ होता है। समाचारोंके साथ ही तत्सम्बन्धी चित्रोंका भी विचार प्रधान उपसम्पादकको करना पड़ता है। ऐसे चित्रों को, जिनमें कोई काम करना या दौड़-धूप आदि दिखाई गयी हो, जिनका समाचारोंकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व हो तथा जिनमें दर्शकका ध्यान अपनी ओर खींच सकने और उसे रोक रखनेकी क्षमता हो, अन्य चित्रोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है।

चित्रके नीचे परिचयके रूपमें जो कुछ लिखा जाता है उसे प्रधान उपसम्पादक अच्छी तरह देख लेता है। पुराने रखे हुए ब्लाकोंके नीचे दिया गया मैटर यदि पुराना तथा असामयिक प्रतीत होने लग हो तो उसे ठीककर सामयिक बना दिया जाता है और ताजे समाचारोंके संबन्ध में बने ब्लाकोंके नीचेका मैटर भी जाँचकर देख लिया जाता है कि कहीं फोटोग्राफरसे कोई गलती तो नहीं हो गयी है। यह काम या तो वह स्वयं करता है या किसी ऐसे उपसम्पादकको सौंप देता है जो सचित्र पत्रकारीमें सिद्धहस्त हो।

मुख्य समाचारका विवरण मुख्य उपसम्पादक स्वयं ही देखता है और उसमें संशोधन, परिवर्तन आदि करता है। अन्य महत्वके विवरण तथा नियमित रूपसे आनेवाले विषय भी वही देखता है। वह कमरेके मुख्य भागमें एक बड़ी मेजके सिरेपर या घड़ी-जो डेस्कपर बैठता है या फिर उस अर्द्धचन्द्राकार मेजके भीतरी भागमें बैठता है, जहाँ बैठकर उपसम्पादक लोग काम करते हैं। मामूली और कम उन्नति किये हुए अखबारोंके दफ्तरोंमें वह उस कम रोशनीवाले गन्दे कमरेमें, जो उपसम्पादकोंका कमरा कहलाता है, अपने अन्य साथियोंके साथ ठूँस दिया जाता है। उसे पहचाननेमें आपको प्रायः अधिक दिक्कत नहीं होती, क्योंकि उसके चेहरेपर अधिकारी और फुरतीलेपनके चिह्न स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ते हैं। वह बार बार घड़ीकी तरफ देखता है और कभी किसी कापीके लिए या किसी आदमीके लिए चीखता चिल्लाता रहता है।

प्रधान उपसम्पादक अपने दलका मुखिया होता है। उस काम सम्बन्धी निर्देश समाचार-सम्पादकसे लेने पड़ते हैं और सन्देह या कठिनाईके समय भी यह उसीसे सलाह मशविरा करता है। नियमानुसार सम्पादन, संशोधन हो जानेपर भी सारी कापीका निरीक्षण उसके लिए आवश्यक है, किन्तु इसके लिए वह अपने अनुभवी सहयोगियोंपर भी विश्वास कर सकता है। नये या कम अनुभवी उपसम्पादकों द्वारा सम्पादित की गयी कुल कापीकी जाँच मुख्य उपसम्पादकको करनी चाहिए।

है पर इस तरह नहीं कि कापी पढ़ी ही न जा सके। अन्तमें कभी कभी वह काटे हुए अंशको फिर ज्योंका त्यों बना रहने देता है और उसपर 'स्टेट' लिख देता है।

नये उपसम्पादकको प्रायः ऐसा काम दिया जाता है जिसे कोई भी पसन्द नहीं करता। प्रायः उसे मुफस्सिलकी कापी ठीक करनेको दी जाती है। यह काम बड़ा टेढ़ा-सा होता है। मुफस्सिलके संवाददाता बहुधा अनभ्यस्त और अनुभवहीन होते हैं। निठल्ले वकील, बेकार व्यापारी तथा अवकाशप्राप्त व्यक्ति जो अच्छे पत्रके साथ अपने नामका सम्बन्ध दिखानेके लिए उत्सुक रहते हैं, संवाददाता बन जाते हैं। ये लोग समाचारों का विवरण इस तरह लिखते हैं मानों किसी सभाकी कारवाई विवरण-पुस्तकमें लिखी जा रही हो। जहाँ तहाँ सम्पादककी तरह ये अपनी राय प्रकट करने लगते हैं—अपने कृपापात्रकी प्रशंसा और वैरियोंकी निन्दा करते हैं। अनुभवशून्य संवाददाताकी अनेक त्रुटियोंका सुधार करता है उपसम्पादक। उपसम्पादक ही उनका रक्षक होता है।

इसके बावजूद भी उपसम्पादकको दोषी ठहराया जाता है कि वह सुन्दर कथानकोंकी 'हत्या' कर डालता है, निष्ठुरताके साथ उन्हें काट कूटकर रख देता है या 'भग भंग' कर देता है। उसे शाप देनेवाले वे ही रिपोटर होते हैं जो समाचार लिखनेकी कलासे अनभिज्ञ होते हैं और जो अपनी लिखी हुई भद्दी वृत्तान्त-गाथाओंको बड़ी सुन्दर रचना मानते हैं। यदि कोई समाचार या विवरण भद्दे ढंगसे लिखा गया हो तो उसका सम्पादन करनेमें सिर खपानेके बजाय नये उपसम्पादकके मनमें उसे अस्वीकार कर देनेकी ही इच्छा होती है।

समाचारकी पहिले उसका कुछ महत्त्व देखकर ही वह उसे रद्दीकी टोकरीमें नहीं डालता। वह उसे नये सिरेसे लिख डालनेका निश्चय करता है। ऐसा वह तभी करता है जब इसकी नितान्त आवश्यकता होती है। वह जानता है कि मेरा काम तो सम्पादन करना और अच्छी तरह हर समाचार या विवरण आदिको देख लेना है, उस दिनके कितना

सम्पादन इस दृष्टिसे करना पड़ता है कि वह उसके समाचारपत्रमें चली आनेवाली परम्परा या पद्धतिके अनुरूप हो जाय।

समाचार-संस्थाओं द्वारा प्रेषित रिपोर्टों तथा सूचनाकार्यालयोंसे विज्ञप्तियोंमें भरकर भेजी गयी सूचनाओं, विवरणों आदिका प्रयोग सावधानीसे करना चाहिये। ये सब विवरण सभी समाचारपत्रोंमें समान रूपमें ही प्रकाशित होते हैं। यदि इनमेंसे किसीको अपने पत्रके लिए अपना निजी अथवा पृथक् रूप देनेकी इच्छा हो, तो अग्रभागका तथा शीर्षककी पंक्तियोंका ढाँचा बदलकर उसे अपने ढंगसे लिख डालना चाहिए।

पाठक केवल समाचार चाहते हैं—विशुद्ध बिना मिलावटवाला समाचार—इसलिये उपसम्पादक किसी रिपोर्टर द्वारा संग्रहीत समाचार या किसी घटनाके विवरणमेंसे वह अंश सावधानीसे निकाल देता है जिसमें रिपोर्टरने अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट की हो। उसे यदि इस बातकी शंका हो कि कुछ तथ्योंको छिपाकर अपने विचार प्रकट किये गये हैं या कुछ बातोंको अत्यधिक या अनुचित महत्त्व दे दिया गया है, तो वह तुरन्त ही इस दोषके परिमार्जनका प्रयत्न करता है। उक्त रिपोर्टरको तुरन्त इस बातकी चेतावनी दे दी जाती है।

कुछ व्यक्तियों तथा संस्थाओंके अपने विज्ञापन-सभा-सूचना-विषयक होते हैं या समाचारात्मक समाचारोंवाले स्तम्भोंमें पुरस्कृत अन्य विज्ञापनयुक्त या प्रचारात्मक विवरण प्रकाशित करानेकी फिक्रमें रहते हैं। उपसम्पादकको अनायास ही इसकी गन्ध मिल जाती है और वह इन अवाञ्छनीय हरकतोंके सम्बन्धमें तनिक भी दया दिखाना नहीं चाहता।

समाचारोंकी सत्यता ही परम लक्ष्य

समाचारोंकी सत्यता ही उपसम्पादकका परम लक्ष्य है। किसी घटना या वक्तव्यकी विश्वसनीयताके सम्बन्धमें यदि ज़रा-सा भी सन्देह उसके मनमें उत्पन्न हो जाता है तो उसकी जाँच करानेके लिए वह सभी सम्भव उपायोंसे काम लेता है। किसी भी हालतमें वह कोई सन्देहयुक्त

निर्दोष नागरिककी ओर संकेत करता-सा जान पड़े तो उसकी ओरसे हरजानेका दावा किया जा सकता है।

तिथियों और आँकड़ोंका मिलान अच्छी तरह कर लिया जाता है। जहाँ सन्देह होता है, वहाँ उपसम्पादक मूल स्रोतका सहारा लेता है और जाँच करनेके बाद भूल दुरुस्त कर दी जाती है। चतुर रिपोर्टर तिथियाँ तथा संख्याएँ अक्षरोंमें लिख देते हैं। उपसम्पादक उनके चारों तरफ घेरा डाल देते हैं ताकि कम्पोजिटर उनके स्थानपर अंक रख दे।

उपसम्पादक प्रायः साहित्यिक या ऊँचे ढंगकी भाषाको प्रोत्साहन नहीं देता। पत्रोंमें छपे हुए समाचार, लेख, विवरण आदि अधिकतर ऐसे सामान्य पाठकोंके लिए होते हैं जो अक्सर अपने अपने कामपर—आफिस, दुकान, स्कूल, कालेज आदि—जानेकी जल्दीमें रहते हैं। उनके पास न इतना धैर्य होता है और न समय कि वे किसी वाक्य या शब्द का अर्थ समझनेके लिए काफी पन्ने उलटनेका कष्ट करें। उपसम्पादक इस तरहके कठिन पारिभाषिक शब्द निकाल देता है और सब बातें पाठकोंके समझने लायक भाषामें रखनेका प्रयत्न करता है। हाँ, भाषामें व्याकरण तथा मुहावरों सम्बन्धी अशुद्धियाँ न रहने पावें इसका ध्यान वह अवश्य रखता है।

ग्राम्य या अशिष्ट शब्दोंका प्रयोग वह भरसक नहीं होने देता, जबतक कि प्रसंग विशेषके कारण इनकी नितान्त आवश्यकता न हो। विशेषणोंका अत्यधिक प्रयोग भी खटकता है तथा 'सर्वश्रेष्ठ' 'अखिल भारतीय' 'अद्वितीय', 'विराट्' आदि शब्दोंका प्रयोग अनुपयुक्त स्थानोंपर न किया जाय इसका ध्यान भी उसे रखना पड़ता है।

कापीमें विराम-चिह्नों आदिका भी यथा स्थान प्रयुक्त होना परमावश्यक है। समाचारपत्रोंमें बरते जानेवाले छपाई सम्बन्धी नियमोंका भी पालन उसमें किया जाना चाहिये। ये नियम तथा विराम-चिह्नों सम्बन्धी नियम भिन्न-भिन्न समाचारपत्रोंमें एक दूसरेसे कुछ भिन्न हो सकते हैं

बड़ा सुन्दर और सर्वांगपूर्ण मालूम पड़ता है। चतुर उपसम्पादक प्रत्येक कथाको यथोचित रूप देनेके लिए इसी तरह परिश्रम करता है। उसके प्रयत्नोंका परिणाम उभरकर निकले हुए अखबारके रूपमें स्पष्ट दिखाई देता है। पाठक उसे अधिकाधिक पसन्द करने लगते हैं।

कानूनका लिहाज

उपसम्पादकसे समाचारपत्रोंपर लागू होनेवाले कानूनोंकी अच्छी जानकारीकी आशा की जाती है—खासकर बदनामी फैलानेका कानून अथवा अदालतकी अवहेलनाका कानून तथा १९३१ का प्रेस ऐक्ट (चौदहवां परिच्छेद देखिये)।

ऐसे वाक्य वह कापीमेंसे निकाल देता है जिनसे किसीकी बदनामी होती हो तथा जिनसे देशकी न्याय-व्यवस्थामें अनुचित हस्तक्षेप होता हो। प्रधान उपसम्पादक ऐसा अप्रिय और नग्न सत्य सम्पादकसे सलाह लेकर तभी प्रकाशित होने देता है जब सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे ऐसा करना आवश्यक होता है। बुराइयों तथा कुकर्मोंका भण्डाफोड़ कर सम्पादक अपने पत्रका गौरव बढ़ानेका प्रयत्न करता है और कानूनमें दिये हुए अधिकारोंका सहारा लेकर अपने कामका औचित्य प्रमाणित करता है।

किसी भी समाचारपत्रके लिए न्याय-व्यवस्थामें बाधा डालकर या न्यायाधीशकी ईमानदारीपर आक्षेप करनेके बाद बच निकलना बहुत मुश्किल होता है। न्यायालयकी अवहेलनाका कानून ही ऐसा है कि उसमें अपराध प्रमाणित हो जानेपर तुरन्त और निश्चित रूपसे दण्ड मिलता है। बचावका रास्ता एक ही मार्ग है—बिना किसी शर्तके और बिना मीन मेखके क्षमायाचना कर लेना। न्यायाधीश उसे मंजूर करें या न करें, यह उनकी इच्छापर है। यदि किसी सम्पादकसे एक बार ऐसी गलती हो जाती है तो सम्भावना यही है कि क्षमायाचना कर लेनेके बावजूद उसे अधिकतम अपराधकी सजा मिल जाय। यदि क्षमा याचना जल्द जल्द और पूरी सचाईके साथ कर दी जाय तो अक्सर

बड़ा सुन्दर और सर्वांगपूर्ण मालूम पड़ता है। चतुर उपसम्पादक प्रत्येक कथाको यथोचित रूप देनेके लिए इसी तरह परिश्रम करता है। उसके प्रयत्नोंका परिणाम छपकर निकले हुए अखबारके रूपमें स्पष्ट दिखाई देता है। पाठक उसे अधिकाधिक पसन्द करने लगते हैं।

कानूनका लिहाज

उपसम्पादकसे समाचारपत्रोंपर लागू होनेवाले कानूनोंकी अच्छी जानकारीकी आशा की जाती है—खासकर बदनामी फैलानेका कानून, अदालतकी अवहेलनाका कानून तथा १९३१ का प्रेस ऐक्ट (चौदहवाँ परिच्छेद देखिये)।

ऐसे वाक्य वह कापीमेंसे निकाल देता है जिनसे किसीकी बदनामी होती हो तथा जिनसे देशकी न्याय-व्यवस्थामें अनुचित हस्तक्षेप होता हो। प्रधान उपसम्पादक ऐसा अप्रिय और नग्न सत्य सम्पादकसे सलाह लेकर तभी प्रकाशित होने देता है जब सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे ऐसा करना आवश्यक होता है। बुराइयों तथा कुकर्मोंका भण्डाफोड़ कर सम्पादक अपने पत्रका गौरव बढ़ानेका प्रयत्न करता है और कानूनमें दिये हुए अपवादोंका सहारा लेकर अपने कृत्यका औचित्य प्रमाणित करता है।

किसी भी समाचारपत्रके लिए न्याय-व्यवस्थामें बाधा डालकर या न्यायाधीशकी ईमानदारीपर आक्षेप करनेके बाद बच निकलना बहुत मुश्किल होता है। न्यायालयकी अवहेलनाका कानून ही ऐसा है कि उसमें अपराध प्रमाणित हो जानेपर तुरन्त और निश्चित रूपसे दण्ड मिलता है। बचावका सम्भवतः एक ही मार्ग है—बिना किसी छलके और बिना मीन-मेखके क्षमायाचना कर लेना। न्यायाधीश उसे मंजूर करे या न करे, यह उसकी इच्छापर है। यदि किसी सम्पादकसे एक बार ऐसी गलती हो जाती है तो सम्भावना यही है कि क्षमायाचना कर लेनेके बावजूद उसे अधिकतम अपराधकी सजा मिल जाय। यदि क्षमा याचना सच्चे हृदय और पूरी सचाईके साथ कर दी जाय तो अक्सर

बड़ा सुन्दर और सजावपूर्ण मालूम पड़ता है। चतुर उपसम्पादक प्रत्येक कथाको यथोचित रूप देनेके लिए इसी तरह परिश्रम करता है। उसके प्रयत्नोंका परिणाम छपकर निकले हुए अखबारके रूपमें स्पष्ट दिखाई देता है। पाठक उसे अधिकाधिक पसन्द करने लगते हैं।

कानूनका लिहाज

उपसम्पादकसे समाचारपत्रोंपर लागू होनेवाले कानूनोंकी अच्छी जानकारीकी आशा की जाती है—झूठी बदनामी फैलानेका कानून, अदालतकी अवहेलनाका कानून तथा १९५१ का प्रेस ऐक्ट (चौदहवाँ परिच्छेद देखिये)।

ऐसे वाक्य वह कापीमेंसे निकाल देता है जिनसे किसीकी बदनामी होती हो तथा जिनसे देशकी न्याय व्यवस्थामें अनुचित हस्तक्षेप होता हो। प्रधान उपसम्पादक ऐसा अप्रिय और नग्न सत्य सम्पादककी सलाह लेकर तभी प्रकाशित होने देता है जब सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे ऐसा करना आवश्यक होता है। बुराइयों तथा कुकृत्योंका भण्डाफोड़ कर सम्पादक अपने पत्रका गौरव बढ़ानेका प्रयत्न करता है और कानूनमें दिये हुए अपवादोंका सहारा लेकर अपने कृत्यका औचित्य प्रमाणित करता है।

किसी भी समाचारपत्रके लिए न्याय व्यवस्थामें बाधा डालकर या न्यायाधीशकी ईमानदारीपर आक्षेप करनेके बाद बच निकलना बहुत मुश्किल होता है। न्यायालयकी अवहेलनाका कानून ही ऐसा है कि उसमें अपराध प्रमाणित हो जानेपर तुरन्त और निश्चित रूपसे दण्ड मिलता है। बचावका सम्भवतः एक ही मार्ग है—बिना किसी तर्कके और बिना मीन मेखके क्षमायाचना कर लेना। न्यायाधीश उसे मंजूर करे या न करे यह उसकी इच्छापर है। यदि किसी सम्पादकसे एक बार ऐसी गलती हो जाती है तो सम्भावना यही है कि क्षमायाचना कर लेनेके बावजूद उसे अधिकतम अपराधकी सजा मिल जाय। यदि क्षमायाचना जल्दसे जल्द और पूरी सच्चाईके साथ कर दी जाय तो अक्सर

दृष्टिकोणसे लिख सकता है जिसकी ओर अन्य लोगोंका ध्यान ही नहीं गया था। कभी-कभी वह 'आगेकी सम्भावना'का ही अग्रभागमें महत्त्व-का स्थान देता है। मान लीजिये, मूल समाचार किसी पदाधिकारीके पदत्यागका है। उपसम्पादक अब जो समाचार अपने पत्रमें देनेके लिए तैयार करेगा उसमें उस व्यक्तिका भी नाम दे देगा जिसकी नियुक्ति उक्त पदाधिकारीके रिक्त स्थानपर होनेकी विशेष सम्भावना हो। हाँ, भविष्यके ऐसे अनुमानका प्रयोग वह अपने वृत्तान्तमें न करेगा जिसका खण्डन किये जानेकी आशंका हो।

सहयोगी पत्रोंसे कतरकर लिये गये समाचारोंकी छानबीन सतर्कतासे की जाती है और उन्हें बड़ी सावधानीसे नये ढंगसे लिखकर पत्रमें देनेका प्रयत्न किया जाता है। समाचारको पुनः लिखते समय वह केवल अग्रभाग ही नहीं बदलता वरन सारी कहानी नये सिरे लिख डालता है और उसके क्रममें भी परिवर्तन कर देता है—नीचेका हिस्सा ऊपर, ऊपरका नीचे। प्रत्येक पैरा, प्रायः प्रत्येक वाक्य, वह नये ढंगसे लिखता है। और इस तरह कहानीको नया रूप देकर उसमें अधिक अच्छी लगने वाली विशेषता ला देता है। यदि लम्बा हुआ कोई विवरण लम्बा होता है तो वह उसका तृतीयांश या अर्द्धांश कम कर देता है। वृत्तान्त छोटा हो तो उसमें और बात बढ़ाकर उसका विस्तार कर दिया जाता है। पुनर्लेखन द्वारा मूल समाचारका स्वरूप निश्चित रूपसे अधिक सुन्दर बना दिया जाता है। उसकी शैली और भी हृदयग्राही हो जाती है। उसका रूप निखर-सा उठता है। चीज नयी लगने लगती है, और कभी-कभी उसमें नये तथ्योंका समावेश भी हो जाता है।

भाषापर जिसका अच्छा अधिकार हो और समाचारोंका महत्त्व पहचाननेमें जिसकी बुद्धि प्रखर हो, ऐसा उपसम्पादक यह काम करनेके लिए सबसे अधिक उपयुक्त होता है। अपनी लेखनीके बलसे वह पुरानी चीजको नया बना सकता है, उसमें नवजीवनका संचार कर सकता है।

मृत्यु हो जाती है। समाचार-सम्पादक पत्रक-स्थित कार्यालयमें इस घटनाका जो समाचार लिखा जायगा वह समान रूपसे सारे देशके उपयोगके लिए होगा। इसके अग्रभाग और शेष भागकी भाषा ऐसी नहीं रखी जा सकती जो देश भरमें पढ़े हुए पाठकोंके विभिन्न समूहोंके लिए समान रूपसे उपयुक्त हो। जब यह समाचार उक्त संस्थाके नयी दिल्ली स्थित कार्यालयमें पहुँचता है, तब वहाँ उस समय काम करते रहने वाला उपसम्पादक दुर्घटनामें मारे गये दिल्लीके करोड़पतिकी मृत्युको विशेष महत्त्व देते हुए अग्रभागको नये सिरेसे लिख डालता है और इसी तरह मुख्य समाचारका ढाँचा भी ऐसा बना देता है जिसमें स्थानीय भागको अधिक महत्त्व एवं प्राधान्य प्राप्त हो जाय। स्थानीयताका पुट लग जानेसे दुर्घटनाका विवरण हमारे पाठकोंके लिए अधिक सार्थक तथा ग्राह्य बन जाता है।

एक और समाचार लीजिये जिसमें, लन्दन, दिसम्बर ११ की तारीख पड़ी हुई है। इसमें सर जान मोकेनहरकी मृत्युका उल्लेख है। इन महाशयके सम्बन्धमें यहाँ किसको दिलचस्पी हो सकती है। कौन ये सज्जन हैं कौन, यह भी तो पता चले। इस समाचारका रद्दी की टोकरीमें फेंक दिया जाना निश्चित है, किन्तु यदि उपसम्पादकको जानकारी हो और वह मूल समाचारमें इतना और बढ़ा दे कि सर जान मोकेनहर भारतके एक प्रान्तके पूर्वकालीन गवर्नर थे जिन्होंने सन् १९१७ के भूकम्प तथा बाढ़से पीड़ित लोगोंकी सहायता पहुँचानेके लिए अद्वितीय उत्साहसे काम किया था, तो यह समाचार निःसन्देह महत्त्वपूर्ण बन जायगा। समाचार-संस्थाका उपसम्पादक दिल्ली निर्देश ग्रन्थोंको उलट पुलट कर समाचारके साथ सर जान मोकेनहरकी संक्षिप्त जीवनी भी दे दे तो भारतीय पाठकोंके लिए इसमें आकर्षण आ जायेगी। मोकेनहरका पुँछला चित्र स्पष्ट हो जायगा और पुरानी स्मृतियाँ जागरित हो उठेंगी।

समाचार-समितिका उपसम्पादक हर एक समाचारपर कड़ी नजर

पड़ता है और सामग्रीकी दृष्टिसे भी उन्हें अपने आपको दैनिक पत्रोंके रविवारवाले संस्करणोंसे अधिक परिपूर्ण और विविध विषयोंके सर्वोत्तम सुसज्जित रखना पड़ता है।

खेलप्रधान पत्रिकाएँ फुरसतके समय पढ़ी जाती हैं, और फुरसतके ही समय उनका रसास्वादन किया जा सकता है। उनकी सामग्री ऐसे समय लिखी और छापी जाती है जब कामकी उतावली नहीं रहती। ऐसी पत्रिकाओंका उपसम्पादक अक्सर कई सप्ताह पहलेसे ही अपने आगामी अंकका ढाँचा तैयार कर रखता है। उसके पास पर्याप्त समय होता है। समयकी सीमारेखाका भय उसे नहीं सताता। उसके पाठक क्या चाहते हैं, यह वह जानता है और उनकी इच्छित वस्तु वह उन्हें भेंट करता है।

प्रथम पृष्ठ सुन्दर और रंग-बिरंगा होता है। पाठककी निगाहें बरबस उसकी ओर आकर्षित हो जाती हैं। भीतरका हिस्सा भी वैसा ही मनोमोहक होता है। सफ़-सफ़ो पढ़नेसे आशा बँधती है कि अच्छी अच्छी चीजें पढ़नेको मिलेंगी, मनको सुस्वादु भोजन प्राप्त होगा। एक एक विषय बड़ी सावधानीसे तथा ठीक ढंगसे प्रस्तुत किया जाता है। शीर्षक बड़े आकर्षक होते हैं और वे हमारी जिज्ञासाको प्रदीप्त कर देते हैं। समय और स्थानकी आवश्यकताके अनुरूप उन्हें बनानेका श्रेय चमत्कारको है। खेल या विषयके ऊपर बड़े सुन्दर ठप्पे दे दिये जाते हैं और उपयोगी सामग्रीके बीच-बीचमें बनाये जाते हैं।

खेल-विषयक पत्रिकाओंमें बहुतसे नाके, नक्शे, हास्यचित्र, अन्य चित्र आदि रहते हैं और उनमेंसे कुछ तो पाठ्य-सामग्रीके बीचमें इस तरह सजा दिये जाते हैं कि देखनेमें बड़े भले मालूम होते हैं। इनमें छपनेवाली कहानियाँ प्रायः शुरू होकर एक बारमें समाप्त कर दी जाती हैं। पाठकको उनका सिलसिला मिलाकर अन्तिमांश ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जितना स्थान उपलब्ध होता है उसीके अनुसार कहानियोंका मेल बैठा दिया जाता है या उनमें काट छाँट कर दी जाती है।

होता है। इसी तरह किसी विशेष भाषावाले क्षेत्र या भौगोलिक इकाईके लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करनेकी दृष्टिसे भी समाचारोंका फिरसे लिखा जाना आवश्यक होता है।

समाचारपत्रका उपसम्पादक महत्वके अनुसार समाचारोंका प्रदर्शन करता है। रेडियोका उपसम्पादक पढ़े जानेवाले समाचारोंको दूसरे ढंगसे रखता है। प्रथम समाचार तो अवश्य सबसे महत्वका होता है किन्तु दूसरा समाचार उसके बादके महत्ववाला ही हो, इसका कोई निश्चय नहीं। रेडियोके उपसम्पादकने यदि भारत राज्यके किन्हीं जिलोंमें हुए उपद्रवके समाचारको एक स्थानपर रखा है तो बहुत सम्भव है कि दुनियाके अन्य हिस्सोंमें हुए वैसी ही घटनाओंका समाचार भी वह इसीके साथ रख दे और इस तरह समाचारोंके रूप या ढंगके अनुसार उनका वर्गीकरण कर दे।

या फिर वह स्वदेशके अन्य समाचार भी उसी सिलसिलेमें दे सकता है जिससे भौगोलिक परम्पराका भंग किये बिना समाचारोंका प्रवाह निर्विघ्न रूपसे जारी रह सके। जिस तरह समाचारपत्रमें प्रकाशित समाचारोंमें विभिन्नता होती है, उसी तरह आकाशवाणी द्वारा प्रसारित समाचारोंमें भी। एक तरहके या मिलते जुलते समाचार या फिर एक ही स्रोतके सब समाचार एक साथ रख दिये जाते हैं और हर बारके प्रसारणमें समाचारोंके प्रायः तीन या चार गुच्छे या समूह होते हैं।

रेडियोका उपसम्पादक कथानकके वे अंश काट देता है जिनके कारण विभिन्न सम्प्रदायों तथा विभिन्न वर्गोंमें परस्पर द्वेषका भाव उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो या जिनसे सरकारकी प्रतिष्ठाकी हानि होती हो अथवा जिनके कारण देशमें प्रचलित स्थितिके सम्बन्धमें गलतफहमी होने या प्रतिकूल प्रभाव पड़नेकी आशंका हो। किसी तरहका सन्देह उत्पन्न होनेपर समाचार-विभाग उच्च अधिकारियोंसे पूछ-ताछ कर समाचारकी पुष्टि करा लेता है। देश और समाजके हितोंकी रक्षाके

स्तम्भों या चौकालेमें शीर्षक देते हैं जो प्रथम पृष्ठपर दो या दोसे अधिक स्तम्भोंमें फैले रहते हैं। अन्य सब महत्वके समाचारोंपर दो या एक स्तम्भवाले शीर्षकका प्रयोग होता है, वे भले ही दो स्तम्भमें फैले हों या एकमें। कभी-कभी इस सामान्य नियमका अपवाद भी दिखाई पड़ सकता है। दिल्लीसे प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी दैनिक 'इण्डियन एक्सप्रेस' ने कुछ नयी बात पैदा की है, विशेषतया शीर्षक पंक्तियोंके रूप और प्रयोगमें। मुख्य समाचारके साथ तो वह तीन मंच शीर्षक देता है जो दो या तीन कालम तक फैले रहते हैं किन्तु और सब महत्वपूर्ण समाचारोंके ऊपर केवल एक मंच शीर्षक ही रखा जाता है जो तीन कालमका, दो कालमका या एक कालमका भी होता है।

शीर्षक-पंक्तियोंके कारण समाचारपत्रके रूप, छपाई तथा बनाव सजावमें भिन्नता आ जाती है और इस प्रकार उसकी चमक-दमक बढ़ जाती है। यहाँसे वहाँतक फैले हुए काले-काले अक्षरोंकी छपाईसे उत्पन्न मनको उबा देनेवाली एकरूपताको भंग करनेमें उनसे सहायता मिलती है। सड़कके उसपार दौड़कर बस पकड़नेके लिए आतुर हुए पाठककी आँखोंको वे अपनी ओर आकर्षित करती और अखबार खरीदनेके लिए प्रोत्साहित करती हैं।

अखबारके लिए शीर्षक-पंक्तियाँ ठीक वही उन खिड़कियोंका काम देती हैं जिनके भीतर सजाकर रखा हुआ बिक्रीका माल देखकर दर्शकका मन ललचा जाता है और वह उसे खरीदनेको उत्सुक हो उठता है। वे बिक्रीके माल अर्थात् अखबारके लेख, प्रासंगिक वृत्तान्त आदिका विज्ञापन करती हैं।

भारतीय पत्रोंमें प्रकाशित होनेवाले शीर्षकोंमें एकसे लेकर चार स्तम्भोंवाले शीर्षक होते हैं। इन शीर्षकस्तम्भोंको एक दूसरेसे पृथक

---

* शीर्षकमें अक्सर एकसे अधिक भाग या खण्ड होते हैं जिन्हें हम मंच (डेक) कह सकते हैं। प्रत्येक मंच या खंडमें एक अथवा एकसे अधिक पंक्तियाँ होती हैं।

समान अक्षर छापा जाता है। यह अनास्था-सा स्थानेवाला शीर्षक 'स्टेट्समैन' तथा 'इण्डियन एक्सप्रेस' के पाठकोंकी नजरोंके सामने प्राय: नित्य ही आता रहता है।

अत्यधिक महत्त्ववाले समाचारके ऊपर भारतीय पत्रोंमें प्राय: पताका शीर्षक (पृष्ठ-शीर्षक) दिया जाता है। यह आठ कालमकी उस पार रखाका काम करते हैं जो पृष्ठके ऊपरी हिस्सेमें बाएं सिरेसे दाहिने सिरेतक पूरे पूरे फैली रहती है। सबसे महत्त्वके समाचारके लिए यह पंक्ति शीर्षकके प्रथम अंश या भागका काम देती है। कभी कभी आठ कालममें दिये गये ऐसे शीर्षक पोस्टरमें रख दिये जाते हैं, जिससे सड़कके किनारे बिकनेवाले पत्रकी बिक्री बढ़ जाती है। सनसनीखेज अखबार इसके लिए ७२ पाइण्ट टाइप (एक इंच मोटा) का प्रयोग करते हैं जो पाठकोंका ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेता है।

भारतीय पत्रोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण समाचारका शीर्षक बहुधा तीन चार गावदुम (इनवर्टेड पिरामिड) शीर्षकोंको मिलाकर बनाया जाता है। उपसम्पादक चाहे तो गावदुम शीर्षकके साथ नीचेमें से कोई एक या एकाधिक अंश या भाग जोड़कर मुख्य समाचारका शीर्षक बना सकता है—

(क) दायें-बायें पूरी फैली पंक्तियोंवाला शीर्षक (Flush right and left)

(ख) कटि-रेखावाला शीर्षक (Waist Line)

(ग) पार रेखावाला शीर्षक या पताका शीर्षक (Cross Line or Streamer)

मुख्य समाचारोंके शीर्षक चौड़ाईमें प्राय: दो कालमके होते हैं। गावदुम शीर्षककी पहली पंक्ति अक्सर दो कालमसे भी अधिक चौड़ाई की होती है और दूसरी पंक्ति या तो दोनों तरफ समान स्थान छोड़कर बीचोंबीच रखी जाती है या फिर बाएं पार्श्वसे दाएं पार्श्वतक पूरी चौड़ाई पर उतनी ही जगहमें रखी जाती है जितनी जगहमें अन्य भाग

या फोर पैका और शीर्षक गायबुम होगा या और किसी तरहका, इत्यादि। बाकीका सम्पादन हो चुकनेके बाद ही शीर्षक लिखा या बनाया जाता है। उस अवसर अलग कागजपर लिखना पड़ता है। हों, यदि शीर्षक पैका या ग्रेट टाइपमें विशेषकर १२ या १४ पाइंटके टाइपमें हों तो जिस मशीनसे मामूली मैटर कम्पोज होता है उसीसे शीर्षक भी कम्पोज हो सकता है।* अधिक बड़े टाइपके शीर्षक या तो किसी दूसरी मशीनकी सहायतासे कम्पोज किये जाते हैं या फिर उन्हें हाथसे कम्पोज करना पड़ता है।

टाइप लचीले नहीं होते—खींचकर या दबाकर उनका आकार हम घटा या बढ़ा नहीं सकते—और खम्भकी चौड़ाई पहलेसे निश्चित होती है, इसलिए शीर्षक-पंक्तियाँ खूब सोच विचारकर लिखनी पड़ती हैं जिससे वे उतनी जगहमें आ जायँ जो उनके लिए निश्चित हो। यदि किसी पंक्तिमें किसी खास टाइपके बीस अक्षरों (या इकाइयों) की गुंजाइश हो तो उपसम्पादक किसी कम्पोजीटरसे यह आशा नहीं कर सकता कि वह उसमें एक इकाईके लिए और जगह कर दे। ऐसा करना किसी भी तरहसे सम्भव नहीं।

उपसम्पादक जानता है कि शीर्षककी किसी पंक्तिमें कितने अक्षर आ सकते हैं। यदि उसके पास शीर्षक पंक्तियों सम्बन्धी नक्शा मौजूद नहीं रहता तो वह समाचारपत्रके पुराने अंकोंको देखकर अपने लिए स्वयं ही एक बना सकता है। इकाइयोंकी गणना करते समय उसे प्रत्येक अक्षरके लिए एक इकाई माननी पड़ती है—केवल अंग्रेजीके दो अक्षरों एम तथा डबलूके लिए और डैशके लिए भी डेढ़ डेढ़ इकाई ग्रहण करनी पड़ती है। हिन्दीमें स्त, म्र, स्व, म्म, प्प, स्स आदि संयुक्ताक्षर इकहरे अक्षरोंसे अधिक स्थान लेते हैं। पूर्णविराम अल्प-

* सब मशीनोंमें इसकी गुंजाइश नहीं रहती और जहाँ समाचारों का मैटर हाथसे कम्पोज करना पड़ता है वहाँ तो ग्रेट टाइपके लिए भी अन्य टाइपोंकी तरह अलगसे कम्पोजिंग करनी पड़ती है।

कही गयी मुख्य बातोंके आधारपर शीर्षक-पंक्तियाँ बनाता है। शीर्षकके पहले भागमें सबसे महत्त्वके प्रसंगका उल्लेख रहता है और उसके बादके भागमें उससे कम महत्त्वकी घटनाओं या बातोंकी ओर संकेत किया जाता है। अक्सर किसी एक शब्द या शब्द-समूहको सबसे ऊपरके अंश (डेक) में प्रथम स्थान मिलना चाहिये। उद्देश्य है तथ्य सामने रखना, जहाँतक सम्भव हो वहाँतक। विशेष महत्त्वकी बातोंका समावेश शीर्षक पंक्तियोंमें कर लिया जाता है। खाली महज सामान्य शीर्षक दिया जाना लोग पसन्द नहीं करते। अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट करना भी निषिद्ध है किन्तु कभी-कभी इसका ध्यान नहीं रहता और इस तरहकी शीर्षक पंक्तियाँ पत्रोंमें देखनेको मिल ही जाती हैं जैसे 'पटनामें पुलिसकी अन्धेर गरदी'।

चतुर उपसम्पादक अतिशयोक्ति कभी नहीं करता और जरा सा भी सन्देह होनेपर शीर्षकके सामने प्रश्नका चिह्न लगा देनेसे नहीं हिचकता जैसे 'सुभाष बाबू मास्कोमें?' किन्तु पत्रके किसी एक ही अंकमें यदि कई स्थानोंपर प्रश्नचिह्नका प्रयोग किया जाय तो इससे पाठकोंके मनमें पत्रके प्रति अविश्वासकी भावना उत्पन्न हो सकती है। उपसम्पादक प्रश्नका चिह्न देनेसे बचनेकी भरसक कोशिश करता है। वह उसका प्रयोग तभी करता है जब वह जानता है कि ऐसा करना नितान्त आवश्यक है।

किसी भी समाचार या विवरणमें पाठककी अभिरुचि 'क्या हुआ' यह जाननेमें ही होती है। किसी घटनाका होना केवल क्रियासे ही प्रकट हो सकता है। इसलिए उपसम्पादक जब कोई शीर्षक गढ़ने लगता है तब वह कोई ऐसा क्रिया शब्द ढूँढ़ता है जिससे समाचारमें वर्णित घटनाका रूप चित्रित हो सके। कर्मवाच्यकी अपेक्षा वह कर्तृवाच्य क्रियाको अधिक पसन्द करता है। वह अंककी पंक्तियोंमें मूल शब्द बहुत ही कम दोहराता है। उनके बजाय वह पर्यायवाची शब्दोंका प्रयोग करता है।

सामग्रीका अन्तिम रूप देनेमें उसे सहायता मिलती है और पत्रका मन-मोहक एवं पठनीय अंक प्रस्तुत करनेमें वह सफल होता है।

भारतीय समाचारपत्रोंमें मेकअपका तरीका प्रायः निश्चित होता है, इसलिए यह काम बड़ी आसानीसे चलता रहता है। हाँ, यदि ऐन मौके पर कोई विशेष महत्त्वका समाचार आ जाय तो फिर सम्पादकीय विभाग के समाचार सदस्योंमें परस्पर सलाह मशविरा करना आवश्यक हो जाता है और मेकअपमें हेरफेर करनेका निश्चय क्षणभरमें करना पड़ता है।

प्रधान उपसम्पादक (सहायक सम्पादक) छापनेका अन्तिम आदेश देनेसे पहले पहले बँधे हुए पृष्ठके प्रूफपर सरसरी निगाह डाल लेता है। उसकी अभ्यस्त निगाहें सहजमें जान लेती हैं कि एक ही समाचार दो बार छप गया है, एक समाचारकी शीर्षक-पंक्ति किसी दूसरेपर रख दी गयी है, मुख्य समाचारसे सम्बन्धित प्रधान व्यक्तिका जो चित्र दिया गया है उसका मुँह छपे हुए मैटरकी ओर न होकर पृष्ठके बाहरकी तरफ हो गया है, कहीं पर गलत तारीख दे दी गयी है किसीके नामके पहले "बाबा" के बजाय "साम्ब" छप गया है, इत्यादि। इनपर वह नीली पेन्सिलसे निशान बना देता है। मुद्रक आवश्यकतानुसार संशोधन कर देता है।

ज्यों ही सहायक सम्पादक हुक्म देता है कि 'छापो', मशीन चल पड़ती है और देखते-देखते एक चमत्कार हो जाता है—समाचारपत्र जन्म ग्रहण कर लेता है।

हम जो समाचारपत्र पढ़ते हैं और जिसे इतना ज्यादा पसन्द करते हैं, वह उस अविख्यात वीरकी उपज है जिसे हम 'उपसम्पादक' कहते हैं। उसे कम ही लोग जानते हैं। समाचारपत्रकी सृष्टि उसके कम-दम और कलेवरका क्षेम पर्याप्त मात्रामें उसीको है, और हम उसके आभारी हैं।

अनौपचारिक, यहाँ तक कि घुम फिरकर भी आनेवाली बातचीतकी, शैलीमें लिखा जाना चाहिये।

दोनोंमें जो अन्तर है वह वर्ण्य विषयका नहीं वरन् लिखने या कथन करनेके ढंगका है। किसी विषयका वर्णन आप किस तरहसे करते हैं, इसीपर यह निर्भर है कि आपकी रचना लेखकी कोटिमें आयगी या 'फीचर' समझी जायगी। फिर भी कुछ विषय ऐसे हैं जिनपर लेख लिखनेके बजाय 'फीचर' ज्यादा अच्छे लिखे जा सकते हैं। यदि कोई पत्रकार इस बातका वर्णन करे कि किसी सुप्रसिद्ध व्यक्तिने अपना जन्म दिवस किस धूमधामसे मनाया, तो उसकी इस कृतिको लेख न कहकर 'फीचर' कहना अधिक उपयुक्त होगा। लेख प्रायः किसी समस्याके, या समस्याके किसी पहलूके, व्यापक अध्ययनका नाम है। मैंभी कुछ परिपाटीके अनुसार उसका प्रारम्भ किया जाता है, उसी तरह उसका परिपाक होता है और उसीके अनुसार उसकी समाप्ति की जाती है। अवश्य ही 'फीचर'में भी आदि, मध्य और अन्त होता है किन्तु इसमें कुछ भिन्नता होती है। उसका प्रारम्भ और अन्त अप्रत्याशित ढंगसे या अकस्मात् ही सकता है। वह कोई विशेष परिश्रमसे और विस्तारके साथ तैयार की गयी रचना नहीं होती। थोड़े शब्दोंमें विश्रम करना ही 'फीचर' की जान है, आत्मा है। अधिक शब्दोंके प्रयोग और इधर उधरकी बातोंके कथन से उसका मूल्य घट जाता है। 'फीचर' में एक ही स्थितिका वर्णन किया जाता है। गद्यमें लिखा हुआ वह एक तरहकी गीतिका (लिरिक) है—मनकी एक क्षणिक स्थिति जो शब्दोंमें संगृहीत सचित्रित कर दी गयी हो। लेखमें गम्भीरसे लेकर उल्लासपूर्वक, दिव्यसे लेकर हास्यास्पदतक कई तरहकी मनःस्थितियोंका कथन किया जा सकता है। लेख उस महलके सदृश होता है जिसमें कई कमरे और कई मंजिलें हों लेकिन 'फीचर' की तुलना हम एक साफ-सुथरे, एक कमरेवाले छोटे घरसे ही कर सकते हैं।

लेख हमें शिक्षा देता है; 'फीचर' हमारा मनोरञ्जन करता है। लेख

विभागको प्रज्वलित कर दिया, जो तभी शान्त हुए जब मैंने उसके व्यक्तित्वका पुनर्निर्माण करने योग्य काफी मसाला इकट्ठा कर लिया।

'फीचर' के भेद

भारतीय पत्र जगत्‌में शायद सबसे लोकप्रिय 'फीचर' वह है जिसे हम व्यक्तित्व सम्बन्धी 'फीचर' कह सकते हैं। भारतमें, अन्य देशोंसे अधिक, यह मान्यता है कि जीवन-चरित्रोंके विस्तृत रूपका ही नाम इतिहास है। उन महापुरुषोंको लेकर, जो जनताके मनमें घर कर चुके हैं, 'फीचर' लिखे जाते हैं, विशेषकर उस समय जब उनके जन्मोत्सव मनानेका अवसर आता है।

जीवन-चरितसे मिलते-जुलते 'फीचर' के सिवा एक और प्रकार वह है जिसे हम पौराणिक 'फीचर' कह सकते हैं। प्रायः प्रति वर्ष दशहरा, दिवाली आदि पर्वोंके समय लेखक इन उत्सवोंका धार्मिक महत्व दिखलाते हुए 'फीचर' लिखते हैं और उन देवी-देवताओंकी कथाओंका वर्णन करते हैं जिनकी स्मृति इन उत्सवों तथा मेलोंके रूपमें कायम रखी गयी है। पौराणिक 'फीचर' नीरस और निस्तत्व-सा लगने लगता है, क्योंकि अक्सर उसमें विचारोंकी एक बँधी हुई परम्पराका ही अनुसरण किया जाता है।

मनुष्यकी दिलचस्पी बढ़ानेवाले 'फीचर' का जन्म अभी कुछ ही वर्ष पहले हुआ है। इसके उद्गम और प्रचारका श्रेय ब्रिटिश तथा *अमेरिकन समाचारपत्रोंके प्रभावको है। भारतके लेखक भी अब ऐसे* विषयोंपर लिखनेका महत्व समझने लगे हैं जैसे 'पाँचवीं बार विवाह करनेवाला सौ बरसका बूढ़ा' या 'घरकी सड़कोंपर दावतें पकनेवाला ११ इंचका बौना।' 'मनुष्यने कुत्तेका काट लिया' जैसी कथाओंने अब अनोखी घटनाओंके महत्वकी ओर नये सिरेसे हमारा ध्यान आकृष्ट कर दिया है। 'फीचर' लिखनेवाले लेखक अब ऐसी बातचीतों या चीजोंको खोज-फिकरमें रहने लगे हैं जो अलौकिक, विचित्र तथा असाधारण हों।

चित्रमय 'फीचर' भी अब पसन्द किया जाने लगा है। इसमें उन

उत्पन्न हो गया था। उन्होंने 'शंकर्स वीकली' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला है जिसमें अन्य सामाजिक कुरीतियों तथा दोषोंका उपहास करनेके लिए भी व्यंग्य चित्रोंका प्रयोग किया जाता है। उनमें वे राजनीतिक नेताओंकी दुर्बलताओं तथा प्रशासन सम्बन्धी त्रुटियोंपर अपनी तूलिकासे तेज रहती व्यंग्यका प्रहार करते हैं। उनके व्यंग्य-चित्रोंने, जो अब सिण्डिकेट द्वारा अन्य अन्य पत्रोंमें भी प्रकाशनार्थ भेजे जाने लगे हैं, नये क्षेत्रकी ओर कदम बढ़ाया है जिसमें अधिकाधिक प्रगति होनेकी सम्भावना है।

'फीचर' लिखनेमें बाधाएँ

"फीचर" लिखनेकी कलाका भारतमें अधिक विकास नहीं हो पाया है, इसके कई कारण हैं। निरक्षरता इसके लिए बहुत हदतक जिम्मेदार है। माँग होने पर ही पूर्ति की जाती है। "फीचर" के रूपमें लिखे गये लेखोंकी अधिक माँग नहीं है, क्योंकि देशके कमसे कम ८५ प्रति शत लोग समाचारपत्र ही नहीं पढ़ सकते।

स्वातन्त्र्य-संग्रामके समय देशके करीब-करीब सभी समाचारपत्र ब्रिटिश राजके विरुद्ध एक आदमीकी तरह खड़े हो गये थे। उनका अधिक स्थान राष्ट्रीय आन्दोलन सम्बन्धी समाचार, नेताओंके लिखे वक्तव्य और अंग्रेजी सरकारके जुल्मोंका ब्यौरा छापनेमें लग जाता था। राष्ट्रीय माँग और राष्ट्रकी आकांक्षाओंका समर्थन करनेवाले लेख तथा विवरण प्रतिदिन निकलते थे। उस समय इन मनोविनोदकी दृष्टिसे लिखे गये लेखोंके लिए गुंजाइश ही कहाँ थी!

स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके कारण लोग बराबर राजनीतिक विषयोंमें ही, उन्हींकी चर्चामें व्यस्त रहते थे। इसीसे दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्रोंमें लेखोंके लिए आनेको ही स्फूर्ति मिली। "फीचर" लिखनेकी प्रवृत्ति, जिसमें जीवनके रञ्जनकारी अंग, मानव रहस्यका चित्रण होता है, यहाँके लेखकोंमें पनपने नहीं पायी। राजनीतिमें सराबोर रहना ही १५ अगस्त सन १९४७ तक भारतीय पत्रोंकी विशेषता थी। स्वतन्त्रताकी

देशके दर्जनों पत्रोंमें ये सब प्रकाशित होते रहे हैं किन्तु अब भी मैंने “फीचर” लिखनेकी बाबत भी पत्रोंसे मुझे यथेष्ट प्रोत्साहन नहीं मिला। “फीचर” लिखकर मैं बहुत कम ही पैसा प्राप्त कर सका। कभी-कभी तो मेरा वह खर्च भी वसूल नहीं हो सका जो मुझे किसी “फीचर” के तैयार करनेमें उठाना पड़ा। फिर भी “फीचर” लिखनेकी ओर मेरा विशेष आकर्षण है और मेरा इरादा उसे छोड़ बैठनेका नहीं है। मेरा विश्वास है कि स्वतन्त्रताके इस उज्ज्वल प्रभातके बाद ज्यों-ज्यों साक्षरता बढ़ती जायगी, पश्चिमके देशोंसे अधिकाधिक सम्पर्क होगा तथा फोटोग्राफीका विकास होता जायगा, त्यों त्यों “फीचर” लिखनेकी प्रवृत्ति भी बढ़ेगी और उनकी अधिक माँग होने लगेगी। अब मैं फीचर लिखकर कई पत्रोंमें छपवा सकता हूँ। सम्पादकगण अब “फीचर” लिखनेको भी प्रोत्साहन देने लगे हैं।

भारतीय पत्रकारोंका यह अभिमत है कि हमारे पत्रोंका ९० प्रतिशत स्थान लम्बे वक्तव्यों तथा उबा देनेवाले भाषणोंसे ही भर जाता है। उनके कारण पत्र बिल्कुल नीरस, एक ही रंगके और निष्प्राणसे प्रतीत होने लगते हैं। उनमें “फीचरों” तथा कथाके लिए बहुत थोड़ी जगह बच पाती है। जो हो, अब वक्तव्योंको कम करके काट-छाँटकर छापनेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है जिससे समाचारोंको छोड़ लेखों आदिको भी स्थान दिया सके।

“फीचर” लिखनेवालोंको किसी तरहका पथप्रदर्शन शायद ही कभी प्राप्त होता है। उन्हें अपनी ही आन्तरिक प्रवृत्ति, ज्ञान और अनुभवका भरोसा करना चाहिये। उन्हें ‘फीचर’ तैयार करनेकी, और उसे लिखनेकी भी कला या प्रविधि कभी सिखायी नहीं जाती। ‘फीचर’ लिखनेकी कोई पुरानी परम्परा भी उनके सामने नहीं है। इस कलाके कोई अच्छे बढ़िया उदाहरण भी भारतमें उपलब्ध नहीं, जिनके आदर्शपर वे अपने ‘फीचर’ तैयार कर सकें या जिन्हें देखकर वे आन्तरिक प्रेरणा प्राप्त कर सकें। ‘फीचर’ लिखनेवालोंको इस कलाके सम्बन्धमें जो बातें

इनके लेखकोंको प्रोत्साहित करते हैं। मैंने एक बार एक मेहतरपर छाया या 'फीचर' लिखा था। केवल 'नेशनल हेरल्ड' ने ही उसे प्रकाशित किया। ऐसे असाधारण विषयपर लिखनेके लिए कुछ लोगोंने पत्र भेजकर मुझे बधाई दी। पाठकोंको इस बातकी विशेष खुशी हुई कि पत्रने मेहतरका चित्र भी प्रकाशित किया जिसमें वह अपनी टोकरी तथा झाड़ू लिये खड़ा था।

भारतमें लेख तथा 'फीचर' लिखवाकर उन्हें विभिन्न पत्रोंके पास प्रकाशनार्थ भेजनेका काम ठिकानेसे करनेवाली शायद ही कोई संस्था हो। कुछ लोगोंने ऐसी संस्था चलानेका प्रयास किया किन्तु उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि सुप्रसिद्धनामा महत्त्वपूर्ण लोगोंसे लेख प्राप्त करनेमें वे असमर्थ रहे।

भारतमें, जैसा कि पश्चिममें भी होता है, बड़े आदमीके मामूली से लेखको भी उस परिश्रम लेखसे अधिक तरजीह दी जाती है जो ख्याति-अर्जनका प्रयत्न करनेवाले किसी नये लेखक द्वारा लिखा गया हो। ऐसे पत्र थोड़े ही हैं जो 'फीचर' छापते हैं और 'फीचर' लिखनेवाले उनसे भी कम हैं। कुछ समाचार-संस्थाएँ कभी-कभी लेख भी भेज देती हैं किन्तु वे 'फीचर' लिखवाकर पत्रोंमें प्रकाशनार्थ भिजवानेकी व्यवस्था शायद ही कभी करती हों।

'फीचर' कैसे लिखे जायँ

अब प्रश्न यह है कि 'फीचर' तथा लेख कैसे लिखे जायें। एक अण्डर ग्रेजुएट भी (एफ० ए० पास व्यक्ति) किताबोंकी सहायतासे अच्छा लेख लिख सकता है, यदि वह मेहनती हो तथा अपने विचार अच्छी तरह प्रकट कर सकता हो। किन्तु कोई व्यक्ति 'फीचर' तभी लिख सकता है जब उसकी निरीक्षणशक्ति खास तौरसे प्रबल हो तथा उसे मनुष्यों और वस्तुओंका अच्छा ज्ञान हो। 'फीचर' तैयार करनेकी अपेक्षा लेख लिख डालना अधिक आसान है।

मान लीजिये किसीको जीवन-चरित्र सम्बन्धी अथवा कोई ऐतिहा

इलाहाबादमें मैं यथोचित अवसर नेहरूजीके निवासस्थान, आनन्द भवन, जाया करता था। वहाँ मुझे बहुधा अच्छे विषय लिखनेके लिए मिल जाया करते थे। एक दिन प्रधान मन्त्रीकी पुत्री इन्दिरा देवीने मुझे बताया कि उनके परिवारका रसोइया बुधी, जो श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डितके साथ मास्को गया था, रूसके सम्बन्धमें बहुत-सी मनोरञ्जक बातें जानता है। बस, मुझे फीचर लिखनेके लिए अच्छा विषय मिल गया, जिसका शीर्षक मैंने रखा 'वह रसोइया जो मास्को गया था'।

मैंने उसे अपने घर बुला लिया और बहुत देरतक उससे बातचीत की। उसने बहुत-सी मनोरञ्जक कथाएँ सुनायीं और कुछ दिलचस्प घटनाओंकी भी चर्चा की। उसने अपने अनुभवोंका जो वर्णन सुनाया, वह बिल्कुल ताजा था और मनोरञ्जक भी, क्योंकि राजनीतिक गुत्थियोंसे वह दूर था। वह अकिंचन श्रेणीका व्यक्ति था और उसके मनपर राजनीतिक विचारधाराओंकी भूलभुलैयाका कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। उससे बातचीत करनेके बाद मैंने जो 'फीचर' तैयार किया वह मेरे लिखे सर्वोत्तम फीचरोंमेंसे एक था।

नेहरूजी जब भी इलाहाबाद आते हैं, मैं मानव हृदयको स्पर्श करनेवाली कथाओं और 'फीचरों' के लिए उनपर नजर रखता हूँ। एक दिन आनन्द भवनमें बैठे हुए उन्होंने थकानका अनुभव-सा करते हुए कहा कि मैं रातभर विश्राम करनेके लिए ही अपने नगरमें आया हूँ। मुझे लगा कि ठीक तो है, मेरे 'फीचर' का शीर्षक भी यही होगा—'केवल एक रात विश्राम करनेके लिए।' मैंने उन्हें अपने नौकरोंसे मिलते और बातचीत करते देखा। बागमें फूल तोड़ते या पुराने साथियोंसे गपशप करते समय भी मैं वहीं था और जब वे अपने निजी कागजात देखने लगे तब भी मैं उनकी भावभंगी आदिका अध्ययन करता रहा। इधर उधरके कई अंश गुम्फित कर मैंने मानव भावनाओंसे ओतप्रोत एक कहानी लिख डाली जो पढ़ने पर बड़ी मनोरञ्जक साबित

कि फीचरका प्रारम्भ कैसे किया जाय, 'फीचर' लिखनेमें कभी-कभी अनुकथाकी प्रविधि या शैलीका प्रयोग भी सफलता दिलानेमें सहायक होता है।

यदि लेखकमें अच्छी योग्यता हो तो मामलेके साथ, धीरे धीरे आगे बढ़नेकी शैलीसे प्रारम्भ कर बादमें उसे भव्य रूप दिया जा सकता है जिसकी परिसमाप्ति परम शिखरपर पहुँच कर हो। इस उपायसे पाठकका ध्यान बराबर कथानककी ओर हो बना रहता है और वह परिणामके सम्बन्धमें तरह-तरहके अनुमान ही करता रहता है किन्तु यह शैली है बहुत कठिन। एक खास तरहका 'फीचर' लिखनेमें ही इसका प्रयोग किया जा सकता है। 'फीचर' का प्रारम्भ तथा अन्त अलंकार या आलंकारिक भाषामें करना हमेशा अच्छा होता है।

अच्छा प्रारम्भ और आनन्दमय अन्त, यही 'फीचर' लिखनेकी सफलताका मुख्य तत्व है, किन्तु 'फीचर' लिखनेकी कलापर लिखे गये इस लेखका भी अन्त आलंकारिक भाषाके प्रयोगकी पेशके साथ हो, यह आवश्यक नहीं है।

भी अपने कामसे चारों तरफ घूमते रहनेके उसके पुराने दिन (जब उसे रिपोर्ट लेने कचहरी या सरकारी सूचनाकार्यालय, आदिको जाना पड़ता था), बहुत पीछे रह जाते हैं।

अब कोई विशेष जिम्मेदारीका काम ही उसे सौंपा जाता है। उसे बहुत कुछ आजादी रहती है और रुपया खर्च करनेकी पर्याप्त सुविधा भी। अक्सर उससे तथा पत्रके सम्पादकसे महीनों देखा देखी नहीं हो पाती और इस तरह वह अपने काममें खुद मुख्तार-सा रहता है। समाज तथा सरकार, दोनोंको उसका विशेष ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि उसमें उनकी सेवा करनेकी सामर्थ्य रहती है और सुलेआम उनका तमाशा बनानेकी भी।

भारतीय संविधानमें समाचारपत्रोंको अन्य सब उद्योगों, वृत्तियों तथा रोजगारोंसे पृथक् रखा गया है और उन्हें लिखने तथा मत प्रकट करनेकी स्वतन्त्रताका निश्चित आश्वासन दिया गया है यद्यपि उतना पूर्ण और पक्का नहीं जितना अमेरिकाके संविधानमें है। संविधानकी इस विशेष अनुकम्पाके कारण विशेष संवाददाताओंको संसदीय सदस्योंके बहुतसे अधिकार प्राप्त होते हैं—सार्वजनिक समारोहोंमें बैठनेका विशेष स्थान, सचिवालयोंमें प्रवेशकी सुविधा, रेलयात्रा सम्बन्धी रियायत, निवासकी सुविधा, प्रधान मन्त्रीसे (या मुख्य मन्त्रियों आदिसे) मिलकर प्रश्न करने और उनका उत्तर पानेका अधिकार। सम्भवतः इन्हीं सब बातोंके कारण जेम्स गोरडन बेनेटने विशेष संवाददाताओंको "आधा राजदूत तथा आधा गुप्तचर" कहा था। उसे दलके सदस्यसे भी अधिक स्वतन्त्रता रहती है क्योंकि उसकी निष्ठा किसी राजनीतिक दलके प्रति न होकर सारे समाजके प्रति होती है।

उसे जो इतना महत्त्व प्राप्त है, उसका कारण यह है कि लोकतन्त्र-प्रणालीमें लोगोंके सामने सब तथ्य ही नहीं रहने चाहिये वरन् सब दृष्टिकोण तथा (किसी धारा, मजमून आदिके) विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किये गये सब अर्थ भी होने चाहिये, तभी वे सार्वजनिक हितके मामलोंमें या

सामग्री पहचानी जा सकती है, इसलिए पत्रका सम्पादक अन्य प्रपत्रों की अपेक्षा उसके लिए अधिक जोखिम उठानेको तैयार रहता है।

भारतमें वह एक काम और करता है। वह उस समाचार या वक्तव्य की भूमिका प्रस्तुत कर रहा है जिसके बारेमें वह जानता है कि संवाद समिति द्वारा इसका पूरा विवरण भेज ही दिया जायगा। उसके भूमिका के रूपमें लिखे गये अनुच्छेदों (पैराग्राफ) के कारण, जिनमें महत्व सारांश और अंशतः टीका-टिप्पणी रहती है, संवाद-समिति द्वारा प्रेषित कोई भी रिपोर्ट, जो इसीके बाद छपी जाती है अधिक आसानीसे पढ़ी और समझी जा सकती है, भले ही वह कई टुकड़ोंमें और असम्बद्ध ढंगसे क्यों न भेजी गयी हो।

पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना तथा अध्यापनका कार्य

अर्थ स्पष्ट करनेका जो अधिक बड़ा काम वह करता है, उसका यह एक छोटा अंशमात्र है। पृष्ठभूमि सम्बन्धी जो सामग्री ढूँढ़-खोजकर वह भेजता है, उससे कोई भी वृत्तान्त अच्छी तरह समझमें आने लायक बन जाता है, इसलिए उसकी रिपोर्ट अलग पड़े हुए फलकी तरह नहीं, वरन् भूमिमें मजबूतीसे जमी हुई जड़ोंवाले वृक्षकी शाखापर लगे हुए फलके तरह देख पड़ती है। यही उसका मुख्य काम है। विशेष संवाददाताने इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा साहित्यमें जैसी शिक्षा हासिलकी हो, उसीके अनुपातमें उसे इस कार्य में सफलता मिल सकती है। प्रत्येक विषयका पण्डित होना उसके लिए आवश्यक नहीं है किन्तु इन विषयोंके जाने माने हुए साहित्यसे परिचित होना उसके लिए आवश्यक है।

संक्षेपमें, समाचार-समितियोंके, रेडियोके* और सरकारके किसी कर्म चारीके विपरीत, विशेष संवाददाताको अपने विवरणों, वृत्तान्तों आदिमें अपना व्यक्तित्व प्रकट करनेकी पूरी स्वतन्त्रता है, विशेषकर उस समय

* जिन देशोंमें रेडियोका संचालन गैर-सरकारी संस्थाओंके हाथमें है, जैसे ब्रिटेनमें वहाँकी बात दूसरी है, क्योंकि वहाँ रेडियोपर भाषण करनेवाले आलोचक स्वतन्त्रतापूर्वक अपना निजी मत प्रकट कर सकते हैं।

एक तरहका सम्पादक, भी होता है। ऐसे संवाददाताओंको अपने सम्पादकोंके आदेशपर घटना-प्रवाह सूचित करनेवाले ऐसे विवरण या कथानक भी भेजने पड़ते हैं जिनके आधारपर सम्पादकीय लेख तथा टिप्पणियाँ लिखकर किसी विषयकी जोरदार चर्चा की जा सके।

सामान्यतः कोई भी भारतीय पत्र अपने विदेश संवाददाताको देशके अन्य पत्रोंमें लिखनेकी अनुमति नहीं देता किन्तु उन विदेशी पत्रोंका प्रतिनिधित्व करने देनेमें आपत्ति नहीं की जाती; बहुधा यह गौरवकी बात समझी जाती है। 'टाइम्स आफ इण्डिया' तथा 'स्टेट्समन' में ऐसे कितने ही पत्रकार काम करते हैं जिनके सम्बन्ध ब्रिटिश पत्रोंके साथ भी हैं और 'अमृतबाजार पत्रिका' तथा हिन्दू' में ऐसे आदमी हैं जो इनके सिवा अमेरिकन पत्रोंके भी प्रतिनिधि हैं। जो हो, मोटे हिसाबसे तो पश्चिमके बड़े-बड़े दैनिक पत्र अपने ही देशके व्यक्तियोंको विदेश संवाद दाता बनाते हैं और ऐसा बहुत ही कम होता है कि कोई भारतीय उनके कामके लायक समझा जाय। इसके विपरीत 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ब्रिटिश तथा अमेरिकन पत्रकारोंके काहिरा, लन्दन तथा न्यूयार्क जैसे महत्त्व-पूर्ण स्थानोंपर भी अपना विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करता है।

समाचारपत्रोंमें काम करनेवाले पत्रकारोंमें यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि विशुद्ध (प्यूर) समाचार दिया जाय, जो तथ्य हो वह निर्भीक रूपसे प्रकाशित किया जाय, यद्यपि पाठकके मनमें अब भी ऐसे समाचार या वृत्तान्त पढ़नेकी भूख रहती है जो विशेष दृष्टिकोणसे तथा नमक मिर्च लगाकर लिखे गये हों। विशेष संवाददाताओंको अभीतक जो छूट मिली हुई है, उसे पत्रके पाठक पसन्द करते हैं किन्तु इससे उन पत्रकारोंको मानो ईर्ष्या होती है जिन्हें घटनाओं आदिका विशुद्ध विवरण देनेके सिवा और कुछ लिखनेकी आजादी नहीं है। जो हो, पाठकगण किसी विषयका अर्थ या अभिप्राय समझनेको ही अधिक उत्सुक रहते हैं, आँकड़ोंकी सूची पढ़नेको नहीं, विशेषकर विज्ञान और शिल्पकी उन्नतिके इस जटिल युगमें

संवाददाताके कामका जो स्तर प्रचलित किया उससे हमारे कितने ही प्रबन्ध सम्पादक भ्रममें पड़ गये—उन्होंने मुझको इस आवश्यकताकी ओर ध्यान नहीं दिया कि यह काम ऐसे पत्रकारोंको सौंपा जाय जो अपने भाव प्रकट करनेमें सुचतुर हों और जिन्होंने यथेष्ट उच्च शिक्षा प्राप्त की हो।

अमेरिका और ब्रिटेनके समाचारपत्र जितनी जल्दी यह बात समझ गये कि केवल शीघ्रलिपि तथा टाइपिंग जाननेवाले व्यक्तिसे यह काम नहीं लिया जा सकता उतनी जल्दी भारतीय पत्र नहीं समझ पा रहे हैं। हमारे देशमें जो परम्परा चल पड़ी है, वह बड़ी देरमें ही टूटती है। भारत सरकारकी राजधानीमें पत्रोंके जो 'विशेष संवाददाता' नियुक्त हैं, उनमेंसे कितने ही बिलकुल मामूली ढंगके हैं, यद्यपि कुछ उच्च योग्यता वाले भी हैं और इनकी संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है। ये लोग भाषणोंकी तथा स्थानीय घटनाओंकी मात्र वैसी ही रिपोर्ट भेज देते हैं जैसी समाचार-समितियों द्वारा भेजी जाती है। यह शिष्टचार मात्र है जिससे विशेष संवाददाताके विषयमें कोई 'विशेषत्व' नहीं रह जाता।

अमेरिका जैसे देशमें भाषण व्यक्तियों क्यों लिखनेके लिए अलग व्यक्ति नियुक्त रहते हैं। उसके लिए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करना विशेष संवाददाताओंका काम है जिससे वृत्तान्त बिलकुल ताजा प्रतीत हो, उसमें अपना निरालापन हो तथा पाठकका ध्यान अपनी ओर खींचनेकी शक्ति हो। अपने पत्रके लिए स्वयं प्राप्त कर कोई समाचार जल्दीसे जल्दी भेज देनेका आज उतना महत्त्व नहीं है जितना उसे प्रस्तुत करनेके अपने निरालो ढंगका। विशेष संवाददाताको एक तरहका कहानी-लेखक या नियमित उपन्यास-लेखक-सा बनना पड़ता है जिसमें बारबार भाषामें किसी चीजका वर्णन कर ऐसा वातावरण प्रस्तुत करनेकी क्षमता हो जिससे प्रभावित होकर पाठक यह अनुभव करे, मानो वह स्वयं प्रत्यक्षदर्शी रहा हो। ठीक ठीक जो कुछ कहा गया या जो कुछ घटित हुआ हो, विशेष संवाददाता उससे आगे बढ़ जाता है। वह हुबहू उस दृश्यकी सृष्टि करता है।

विशेष प्रतिनिधि

हमने विशेष संवाददाताओंके लक्षण बता दिये और यह भी देख लिया कि वह रिपोर्टरों, सम्पादकों, संवाद-समितिके आदमियों, रेडियोके आलोचकों तथा स्तम्भ-लेखकोंसे भिन्न होता है। उसका विशेषत्व कहाँ शुरू होता है यह हमने देख लिया। किन्तु अभीतक हमने समूचे वर्गका वर्णन किया है पर अब हम देखेंगे कि उनके भेदों या प्रकारोंमें क्या अन्तर होता है।

विशेष संवाददाताओंका ही एक भेद 'विशेष प्रतिनिधि' भी होता है और यह भारतमें प्रायः नियमित रूपसे प्रचलित है। सन् १८९९ में लार्ड कर्जनके वाइसराय बनकर आनेके बादसे यहाँके प्रमुख दैनिक पत्रोंका रिवाज-सा चल पड़ा कि गर्मियोंमें जब कभी भारत सरकारका कार्यालय कलकत्तेसे हटकर शिमलेमें चला जाता था, तब प्रभावशाली और उच्चाधिकार-सम्पन्न व्यक्ति उनके प्रतिनिधिके रूपमें वहाँ नियुक्त कर दिये जाते थे।

यह रिवाज चल पड़नेका कारण यह था कि उस समय दिल्लीके क्षेत्रमें कोई भी प्रभाव-सम्पन्न दैनिक पत्र नहीं था। जो पत्र सबसे निकट पड़ता था वह था लाहौरका 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट'। मद्रास, बम्बई और कलकत्तेके बड़े बड़े समाचारपत्र शिमलेमें केवल समाचार प्रेषकोंकी नियुक्तिसे सन्तुष्ट न थे। वे उस महानगरीमें अपने प्रतिनिधि या 'एलची' (राजनीतिक दूत) भी रखना चाहते थे। इनकी सहायतासे बहुत-सी भीतरी जानकारी ही प्राप्त नहीं की जा सकती थी वरन् कुछ रियायतें तथा सुविधाएँ पानेके लिए भी प्रयत्न किया जा सकता था।

इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए ऐसे व्यक्तियोंकी आवश्यकता थी जो वाइसराय-भवनमें तथा सचिवालयमें आसानीसे प्रवेश पा सकते थे। पायोनियर (इलाहाबाद) के भी होवर्ड हैन्समैन, केवल अपने पत्रके लिए, उच्चाधिकारियोंसे मिलकर प्रश्नोत्तर द्वारा जानकारी प्राप्त करनेवाले प्रतिनिधिके रूपमें शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गये। विशेष प्रतिनिधियोंके इस

आदिमें छपे विवरणके आधारपर, तैयार कर लिया जाता है। खेद है कि देशके कुछ पत्र तो सरकारसे प्राप्त सूचना-पत्रों आदिमें दी हुई शीर्षक पंक्तियाँतक ज्यों की त्यों रहने देते हैं, उन्हें फिरसे अपने ढंगपर लिखने का भी कष्ट नहीं करते।

जब किसी विशेष संवाददाताको अपने पत्रके प्रधान कार्यालयसे दूर रहना पड़ता है और राजधानीमें उसकी नियुक्ति होती है, तब वह विशेष प्रतिनिधि कहलाता है। ऐसे संवाददाताको जब स्वदेशके बाहर जाना पड़ता है और किसी देशकी राजधानीमें या संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी अन्तर राष्ट्रीय संस्थाके प्रधान कार्यालयमें उसकी नियुक्ति होती है,तब उसे 'विदेशी या विदेशस्थ संवाददाताकी संज्ञा प्राप्त होती है। एक व्यक्ति वही विशेष संवाददाता है जो राष्ट्रकी राजधानीमें 'राष्ट्रीय' संवाददाता, विदेशोंमें विदेशस्थ संवाददाता तथा युद्ध-क्षेत्रमें 'युद्ध-संवाददाता' कहलाता है। अपने सम्पादकसे जितनी दूर उसे रहना पड़ता है उसकी तड़क भड़क तथा उसका खर्चा भी उसी अनुपातसे बढ़ता जाता है। वह ऐसा नक्षत्र है जो वह आकाशमें चमकता देख पड़ सकता है और बहुतसे महत्त्वपूर्ण समारोहोंमें उसे निकटकी अच्छी जगह बैठनेको मिलती है। हमेशा तो वह वर्तमान इतिहासका प्रत्यक्षदर्शी बना रहता है किन्तु एकाध बार वह इतिहास निर्माता भी बन जाता है, जैसे जार्ज स्लोकाम्ब नामक पत्र-प्रतिनिधि बना जब उसने सन् १९३१ में यरवदा जेलमें महात्मा गाँधीसे भेंट मुलाकात की—(इस मुलाकातके सम्बन्धमें पहलेसे ही वाइसरायने मंगलकामना की थी)—और यह समाचार प्रकाशित किया कि भारतका यह महान् नेता 'स्वतन्त्रताके सार भाग'से भी सन्तुष्ट हो जायगा। यही वह सिद्धान्त था जिसके आधारपर बातचीत आगे बढ़ सकी और समझौता हो सका। ये ही आजके पता लगानेवाले तथा स्थितिको गहराईतक जाननेवाले व्यक्ति हैं। ये उत्तम श्रेणीके सम्मानित नागरिक हैं जो राजदूतावासके सदस्योंकी टक्करके होते हैं।

इस सिलसिलेमें विशेषत्र सम्वाददाताओंकी अर्थात् एक विशेष तरहके

उच्चाधिकारी—"मैं एक बात केवल अपने और तुम्हारे बीचमें कहना चाहता हूँ। यह लिखित विवरणके बिल्कुल बाहरकी चीज है। तुम्हें मेरे सामने प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम्हारे सिवा किसी अन्य व्यक्ति पर यह प्रकट न होने पायगी।'

विशेष संवाददाता—"क्षमा करें, महाशय, ऐसी गुप्त बात जाननेमें मेरी तनिक भी अभिरुचि नहीं है।"

ऐसे आत्म-नियन्त्रण तथा साहसकी आवश्यकता प्रायः ही पड़ती है। कई मामलोंमें तो इस तरहकी गुप्त जानकारीसे विशेष काम हो सकता है। किन्तु अन्य कितने ही मामलोंमें विशेष संवाददाताको निस्संकोच स्पष्ट कह देना चाहिये—"कृपया अपना गोप्य रहस्य प्रकट न कीजिये क्योंकि मैं चुप्पी ही साधे रहूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा मैं नहीं कर सकता।" बहुत बार तो ऐसा होगा कि उक्त 'रहस्य' संवाददाताको पहले ही मालूम हो चुका रहेगा। यदि नहीं हुआ तो भी १० में से ९ उदाहरणोंमें उसे अन्य जरियोंसे उसका पता चल जायगा, क्योंकि ऊँचे अधिकारी भी आखिर मनुष्य हैं और अपना प्रचार करानेके इच्छुक रहते हैं। इसलिए विशेष संवाददाताओंके लिए कभी भी ऐसी गुप्त जानकारी किसी शर्त या प्रतिज्ञाके साथ प्राप्त करना बुद्धिमानी न होगी, जिसे उसके प्रतिद्वन्द्वी बिना शर्त के ही किसी अन्य जरियेसे प्राप्त करनेमें सफल हो जायें और उसे उसके पहले ही प्रकाशित भी कर दें। उसे इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये—समाचार प्राप्त होनेके महत्त्वपूर्ण स्रोतोंके सम्बन्धमें भी—कि कोई उससे अपने प्रचारका ही काम न लेने लगे।

उसका सबसे बड़ा कर्तव्य जनताके प्रति होता है, इसलिए किसी व्यक्तिविशेषके प्रति, फिर वह चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, उसका कर्तव्य अपेक्षाकृत गौण ही माना जाना चाहिये। सबसे महत्त्वके गुण जो किसी विशेष संवाददातामें होने चाहिये, वे ये हैं—

१ व्यापक क्षेत्रके विभिन्न तरहके लोगोंसे सम्पर्क—सरकारी अफ-

हमेशा हिस्सा ग्रहण करते हैं, भले ही इसका उन्हें मान न हो। उनमें इन बातोंका होना आवश्यक है—

विदेशी भाषाओंका ज्ञान। (भारतमें अंग्रेजीके सिवा फ्रेंच तथा जर्मन, दूसरी भाषाओंके रूपमें अधिक लोकप्रिय हैं किन्तु रूसी, चीनी तथा स्पेनिश भाषा जाननेवाले व्यक्ति पत्रकारोंमें अधिक काम कर सकते हैं, जैसे कूटनीतिक क्षेत्रोंमें भी)।

शब्द-चित्र प्रस्तुत करनेकी स्वाभाविक योग्यता।

यह ज्ञान रखनेकी बुद्धिमत्ता कि कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों तथा विवादोंका कोई सीमा और तात्कालिक समाधान नहीं होता साथ ही यह भी कि झगड़ा वस्तुतः न्याय और अन्यायका नहीं, वरन् न्याय और न्यायका ही है और किसीका राष्ट्रभक्तिसे प्रेरित झुकाव यद्यपि न्यायोचित समझा जाता है, फिर भी वह हमेशा न्याय्य नहीं होता।

विदेशी संवाददाताको कभी-कभी बहुत ही कठिन काम सौंप दिया जाता है, विशेषकर ऐसे सुप्रसिद्ध साप्ताहिकों द्वारा जैसे 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन' (लन्दन), तथा 'न्यू रिपब्लिक' (वाशिंगटन)। हमारी 'लन्दनकी चिट्ठी', 'वाशिंगटनकी चिट्ठी' या 'दिल्लीकी चिट्ठी' से आशा की जाती है कि देशमें उस सप्ताह सबसे अधिक चर्चा किस बातकी रही, कौन-सा मुख्य प्रश्न सबके सामने रहा, इसका कथन उसमें हो। केवल एक ही वृत्तान्त या कथानक दे देनेसे काम नहीं चलता और जब केवल एक ही विषयका वर्णन किया जाता है, तब वह देशके सर्वोपरि भावका सूचक माना जाता है।

यदि बिलकुल 'मामूलीपन' तथा ऊपरसे देखने भरकी सचाईसे बचना चाहे तो यह काम करना काफी कठिन है। ऐसी चिट्ठियोंमें सुन्दर बारबार भाषाका प्रयोग करना सफलताकी कुंजी है, क्योंकि यहाँ पत्रकारकी रचना साहित्यकी ओर उन्मुख-सी होती जान पड़ती है। बिजरेलीने 'लन्दन टाइम्स' के बारेमें सन् १८४० में लिखा था—

'आश्चर्यकी चीज यह है कि 'टाइम्स' क्यों मेरे मापदण्डका प्रशंसनीय

मित्रोंसे ही प्राप्त नहीं होते, सचारूढ़ व्यक्तियोंके विरोधियोंसे और स्वयं सत्ताधारियोंसे भी प्राप्त होते हैं। वे सबके सब विशेष संवाददाताकी थोड़ी सी सहायता करना चाहते हैं, इस आशासे कि जब मौका आयगा तब अपनी बात भी प्रकाशित करानेकी सुविधा उन्हें मिल सकेगी। मुख्य रूपसे उसे जानकार लोगोंसे की गयी अपनी बातचीतपर ही निर्भर रहना चाहिये।

सामान्य रिपोर्टरकी अपेक्षा विशेष संवाददाताके मार्गमें अधिक गड्ढे हैं और वे अधिक गहरे भी हैं। इसका पैदा कर देनेकी अपनी शक्तिके कारण वह अपनेको आवश्यकतासे अधिक बड़ा समझने लग सकता है और यही उसके अन्तका प्रारम्भ है। फिर, यह भी सम्भव है कि वह जिन 'महत्त्वपूर्ण सूत्रों' से समाचार प्राप्त करता रहता है, उनकी अपनी इच्छाके अनुसार सोची गयी बातोंको ज्योंकी त्यों स्वीकार करने लगे और इस तरह स्वयं निर्णय करने या भावी घटनाओंके सम्बन्धमें पहलेसे कुछ कह सकनेकी शक्ति खो बैठे। केवल ऊँचे लोगोंसे ही सम्पर्क बनाये रखनेपर उसके वृत्तान्त खोखले बने रह सकते हैं। महत्त्वके समाचार तो उनसे प्राप्त होते हैं पर उनका असली तत्त्व उन लोगोंके पास ही मिल सकता है जो उनका ब्योरा तैयार करते हैं। केवल ऊँचे लोगोंसे सम्पर्क स्थापित करनेका एक परिणाम यह भी हो सकता है कि वह एक दलके लोगोंके ही बीच मँडरानेवाला व्यक्ति बन जाय और समुचित रूपसे अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें धीरे धीरे असमर्थ होता जाय। जब सब बातें आसान सी हो जायें, तब उसके लिए आवश्यक है कि वह अधिक कड़ाईसे काम ले।

भारतीय पत्रकारीमें विशेष संवाददाताओंका महान् युग अभी आने को है किन्तु क्षितिजपर प्रकट होनेवाले नक्षत्रोंको देखते हुए तथा पाठकों पर अपने विशिष्टत्वका प्रभाव जमानेकी समाचारपत्रोंकी बढ़ती हुई प्रवृत्तिका ध्यान रखते हुए हम कह सकते हैं कि वह समय अब अधिक दूर नहीं, निकट ही है।

पिताजीसे पूछा—'क्या मैं भी पत्रकारी सीख रहे हैं?' उन्होंने मुसकिराते हुए कहा 'जी हाँ।' श्री हार्निमैनको सुनकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने अपनी भौंहें ऊँची करते हुए कहा "कहो, नटराजन, तुम तो इस पेशेकी सारी स्थिति जानते ही हो न?"

पिताजीने बड़ी गम्भीरतासे कहा "मैं उसे अन्य किसी कामके लिए तैयार भी तो नहीं कर सकता था, और न मेरी इच्छा ही थी कि वह कोई और पेशा अख्तियार करे।"

हार्निमैन कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले—"आप ठीक कहते हैं किन्तु भारतमें पत्रकारोंका जीवन बहुत ही कठोर है। मुझे यह बात बतानेकी आवश्यकता नहीं।

अब इतने समय बाद उस घटनाका स्मरण करता हूँ तो जो चीज मुझे अनोखी जान पड़ती है, वह यह है कि मुझे यह देखकर आश्चर्य नहीं हुआ कि ये दोनों महाशय, जिनके विचारोंमें भारी असमानता थी किन्तु जो अपने पेशेके उच्च शिखरपर थे, पत्रकारोंकी कठिनाइयोंसे इतने अधिक प्रभावित थे, वरन् मुझे आश्चर्य इसपर हुआ कि पिताजी क्यों इस मामलेमें इतनी दिलचस्पी लेते थे कि मैं यह वृत्ति ही ग्रहण करूँ। इस विषयपर मेरी उनकी कभी बातचीत नहीं हुई और यह तो स्पष्ट ही था कि 'रिफार्मर' के सम्पादनसे जीवन निर्वाहकी कोई आशा नहीं की जा सकती थी।

पत्रकारीकी प्रथम शिक्षा मुझे 'रिफार्मर' से मिली—समाचार लेखक तथा प्रूफ-संशोधकके रूपमें। 'लीडर' के सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणिने एक बार पत्रकारोंकी शिक्षाकी चर्चा करते हुए लिखा था कि उन्हें बहुत अधिक शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये। 'रिफार्मर' ने तुरन्त इसकी आलोचना की। भावोंकी ठीक ठीक अभिव्यक्ति करनेवाले शब्दोंका प्रयोग करते हुए थोड़ेमें अपनी बात कहना, अनावश्यक विस्तार से बचना—यही इस पत्रकी परम्परा रही है। सन् १९४ में जब 'स्टेट्समैन'के तत्कालीन सम्पादक श्री आर्थर मूरसे मेरा परिचय कराया

इसमें सन्देह नहीं कि मेरे लिए तो उनकी तरफ देखनेकी आवश्यकता ही न थी। यदि मैं उन वाक्योंको आवश्यक न समझता तो उन्हें लिखता ही क्यों? मैंने अपनी भावभंगीसे यह सूचित कर दिया।

फिर भी ऐसा करके देखा गया! मैंने वह नोट पढ़ा, पहले तो उन पंक्तियोंके साथ, फिर उन्हें निकालकर। मुझे यह जानकर भारी अचम्भा हुआ कि सचमुच उन वाक्योंके बिना वह और भी अच्छा लगा, यद्यपि जब मैंने उन्हें लिखा था तब मैंने उन्हें बहुत ही उपयुक्त समझा था।

एक बातकी परेशानी मुझे और रहा करती थी,—बार बार पूछे जानेवाले इस प्रश्नका उत्तर देना कि 'इसका क्या मतलब हुआ?' नतीजा यह होता था कि सभी अनावश्यक शब्द निकाल देने पड़ते थे और रचनामें अस्पष्टता या संदिग्धता नहीं रह जाती थी। अपनी ही रचनाको फिरसे दोहराना मुझे बिलकुल अच्छा न लगता था और दूसरेके साथ बैठकर ऐसा करनेमें तो तुतुनी घबराहटका अनुभव होता था। फिर भी इससे बड़ा काम पहुँचता था, इसमें कोई सन्देह नहीं। मेरा काम सुव्यवस्थित नहीं होता और मैं मामूलीसे अधिक परिश्रम करता हूँ, यह बात भी नहीं। फिर भी जब मैं पत्रकारी करनेवाले कितने ही व्यक्तियोंकी आदतें देखता हूँ तो मैं अनुभव करता हूँ कि मैं सचमुच बड़े आराममें रहा। एक बात और जो मुझे कह देनी चाहिये वह है शास्त्रिनिर्देशकी धुन जो मेरे पितापर हमेशा सवार रहती थी। ईश्वरने उन्हें असाधारण स्मरणशक्ति प्रदान की थी, फिर भी सन्देह होनेपर व छोटी-छोटी बातके सम्बन्धमें भी फिरसे जाँच कर लिया करते थे। मुझे स्मरण है कि एक बार एक लेखके नीचे कुछ जगह खाली रह गयी थी उसे भरनेके लिए मैंने शेक्सपियरका एक अवतरण दे दिया। जल्दीमें उसके शब्दक्रममें कुछ भूल रह गयी।

उन दिनों भी वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री 'रिफार्मर' को प्रति दिन बड़े ध्यानसे पढ़ा करते थे। उन्होंने देर नहीं की और अवतरणका शुद्ध रूप देते हुए पत्र लिखा। पिताजीने केवल इतना ही कहा—'पता लगा-

है, फिर भी प्रविधियाँ तो सीखी ही जा सकती हैं, उनका सहारा लिया ही जा सकता है। अब तो पहलेसे भी अधिक समाचारपत्र निकलने लगे हैं और सरकारी रिपोर्टों आदिकी भी संख्या बढ़ गयी है।

लेखनके दो मौलिक तत्त्व जो मेरे मस्तिष्कमें अच्छी तरह प्रविष्ट कराये गये थे, वे हैं – कोई बात बढ़ा-चढ़ाकर कहनेके बजाय कुछ घटा कर ही कहना तथा इस तरहकी आधारभूत ईमानदारी कि यदि किसी विषयपर कुछ लिखनेके लिए सामग्री एकत्र करते समय आप जो मत प्रकट करना चाहते हैं, उसके विरुद्ध भी कुछ तर्क या तथ्य मिलें तो उनकी भी चर्चा लेखमें कर देना। मैं यह तो नहीं कहता कि मैंने हमेशा इन सिद्धान्तोंका अनुपालन किया है, फिर भी मैं कहूँगा कि जब भी मैंने उनकी अवहेलना की है, मुझे इसका बराबर ध्यान बना रहा है। मुझे स्मरण है कि श्री एस सदानन्दने, जिनके साथ चार वर्षतक 'फ्री प्रेस जर्नल' मे काम करनेका सुअवसर मुझे मिल चुका है, मेरी इस बातकी ओर संकेत कर इसे मेरा दोष बतलाया था। आश्चर्य तो यह है कि उन्होंने श्री कामाक्षी नटराजनको ही अपनी इस रायके लिए प्रमाण माना कि अग्रलेखमें केवल एक ही दृष्टिकोणका प्रतिपादन होना चाहिये और उसमें निश्चित मत ही प्रकट किया जाना चाहिये (जिससे उनका मतलब यह था कि उसमें विरोधी बातोंका समावेश न होना चाहिये)। अपनी दलीलकी पुष्टिमें श्री सदानन्दने यह भी कहा "इस सम्बन्धमें वे मैथ्यू आरनाल्डकी वे पंक्तियाँ भी दोहराया करते थे जिनमें कहा गया है कि जनता निश्चित और पक्की बात ही सुनना चाहती है।' मैंने ब्राउनिंगकी कविताकी पंक्तियाँ देकर अपने मतका समर्थन करनेका प्रयत्न किया किन्तु श्री सदानन्दकी धारणा नहीं बदली।

'रिफार्मर' की एक और विशेषता यह थी कि जो गलतियाँ हो जाती थीं, पता चलनेपर — भले ही उनका पता हम लोगोंने स्वयं ही लगाया हो — हम उनका संशोधन पत्रमें निस्संकोच भावसे प्रकाशित कर देते थे। यह सिद्धान्त भी मैंने पत्रकारोंके पेशेमें बहुत उपयोगी पाया। जब आपने

हो जायगा, उतना अन्य पृष्ठोंके सम्बन्धमें नहीं हो सकता। नये, युवक लेखकको यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जिन विषयोंपर भी टीका टिप्पणी करनी हो, उनमेंसे प्रत्येकके सम्बन्धमें नीतिका प्रश्न नहीं उठ सकता। वास्तवमें यह वांछनीय है कि नीतिका प्रश्न कम-से-कम मामलोंमें उठाया जाय और वे बिलकुल साफ, निश्चित विषय ही हों। जो पत्र हर विषयकी टीका टिप्पणीको अपनी नीतिके दायरेमें रखनेका प्रयत्न करता है, वह कुछ ही समय बाद अनावश्यक जटिलताओंसे अपने आपको ग्रस्त पा सकता है।

यहीं 'सम्पादकीय' तथा 'अग्रलेख' में अन्तर करना पड़ता है। सामान्यतः अग्रलेखोंकी संख्या (टिप्पणियोंकी तुलनामें) कम होती है। पत्रकारकला सम्बन्धी पुस्तकोंके अनुसार 'अग्रलेख' पत्रके मुख्य लेखको कहते हैं किन्तु इसकी और भी परिभाषाएँ हैं जिनसे मति-विभ्रमका आभास मिलता है। एक लेखकका कहना है कि प्रथम सम्पादकीय लेखको ही अग्रलेख कहना चाहिये किन्तु कुछ लोग 'अग्रलेख' (लीडर) को उस लेखका द्योतक मानते हैं जो पाठकोंका रास्ता बताने ('लीड' करने) का उनके नेतृत्वका, काम करे। स्थान और सजानेके ढंगसे ही किसी लेखका महत्त्व नहीं बढ़ सकता। सम्पादकीय लेखके परम्परागत रूपकी—उसके तीन हिस्सोंमें विभक्त होनेकी विषयप्रवेश, विकास, उपसंहार—भी अब अक्सर रक्षा नहीं की जाती, फिर भी अनेक बार ऐसा होता है कि घुमा फिराकर उसका यह रूप आ ही जाता है।

विवरणात्मक या व्याख्यात्मक अग्रलेखमें—और प्रायः इन्हींकी संख्या अधिक होती है—सामान्यतया यह ढाँचा कायम रखना ही पड़ता है। हाँ, किसी नीति या वक्तव्य आदिके समर्थनमें अथवा उसकी आलोचना करनेकी दृष्टिसे लिखे गये लेखमें इस शैली या ढंगके बदल दिये जानेकी अधिक संभावना रहती है। जिस अग्रलेखमें मानव-हृदयको स्पर्श करने वाली, मनुष्यकी अभिरुचि बढ़ानेवाली, बातोंका समावेश हो, वह अपने ढंगका निराला ही होता है। भारतीय पत्रोंमें ऐसा अग्रलेख क्वचित् ही

गम्भीरता नहीं होती, इसमें तो सन्देह ही नहीं—मी प्रेस कर्नलकी अनौप चारिक शैली, मारक्वीसिके लेखका उपाख्यान जैसा रूप तथा दैनिकोंके तीसरे सम्पादकीयका विनोदात्मक ढंग ऐसी चीज हैं जिनका अनुकरण अन्यत्र नहीं किया गया। बंगालके पत्रोंके लेख दूसरे तरहके होते हैं—उनकी शैली कुछ गम्भीर-सी होती है जो पूर्ववर्ती युगका स्मरण दिलाती है। इन केन्द्रोंके प्रमुख पत्रोंके अग्रलेखों तथा भारतकी राजधानीसे निकलनेवाले पत्रोंके लेखोंका अध्ययन करनेसे पत्रकारोंकी शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तिको यथेष्ट लाभ हो सकता है।

इसके सिवा विभिन्न सम्पादकोंकी अपनी अपनी सनक अवश्य होती है जिसकी जानकारी किसीके व्यक्तिगत अनुभवसे प्राप्त करनेकी आव श्यकता शायद नहीं है। जब मैंने 'पायोनियर' में पहली बार काम करना शुरू किया, तब मैं उप-सम्पादक था और उस समय जब भी मैंने कोई सम्पादकीय लेख लिखनेकी चेष्टा की उससे सहायक सम्पादकोंकी भृकुटियाँ चढ़ जाती थीं—वे समझते थे कि मैं उनके लिए सुरक्षित भूमिमें प्रवेश करनेकी अनधिकार चेष्टा कर रहा था। समाचार-सम्पादकको भी यह बात बुरी लगती थी, क्योंकि उनका ख्याल था कि सम्पादकीय लिखनेवालोंके पास यथेष्ट काम नहीं है, अतः किसी अन्य व्यक्तिके हाथ लिख देनेसे उनका भार हल्का होनेकी, उन्हें राहत मिलनेकी, कोई बात नहीं।

किन्तु जब पार वर्ष बाद मैंने फिर उस पत्रमें काम करना शुरू किया, इस बार सहायक सम्पादकके रूपमें तब मेरा पाला डेसमण्ड यंग जैसे विकट आदमीके साथ पड़ा जो बहुत ही अन्यान्य बातोंकी माँग हम लोगोंसे किया करते थे। एक दिन तीसरे पहर मैं भारतीय इस्पातके सम्बन्धमें बहुत-सी बातोंका पता लगानेकी चेष्टा कर रहा था, इस बातसे लेकर कि विज्ञापन-विभागको टाटा कम्पनीकी सम्भावना बनाये रखनेमें अधिक दिलचस्पी तो नहीं है, इस बाततक कि टैरिफ बोर्डकी रिपोर्टमें इस्पातके उद्योगके सम्बन्धमें क्या-क्या कहा गया है।

जाने लगी कि मैं किसी तरह फ्री प्रेस जर्नलके दफ्तरमें जा पहुँचूँ। जब मुझसे बातचीत हुई तो पता चला कि अमुक अंकके लिए मुझे एक अग्रलेख लिख देना है। यह भी मालूम हुआ कि श्री श्रीनिवासम् स्वयं कह गये हैं कि मैं उनके लिए यह काम कर दूँगा। बस, इस व्यवस्थाके सम्बन्धमें मुझे पहले-पहल इतना ही विदित हुआ। मैंने इस जिम्मेदारीसे बचनेका प्रयत्न किया किन्तु बाहर निकलनेका कोई मार्ग साफ न पड़ा।

इस समय सन्ध्याके ७॥ बज चुके थे और मुझे पूर्व निश्चयके अनुसार ९ बजे रातमें एक जगह भोजन करनेको जाना था। मैंने दफ्तर वालोंसे कहा कि पत्रकी छः महीनोंकी फाइल एक टाइपराइटर और टाइप करनेका कागज सम्पादकीय मेजपर रखवा दिये जायँ। जब मैं वहाँ पहुँचा, तब दफ्तरके उस लड़केके सिवाय जिसने मेरा स्वागत किया न कुछ तीन चीजें ही मुझे वहाँ देख पड़ीं। दफ्तरमें उस समय कोई नहीं था, जैसा कि दो पालियोंके बीचमें प्रत्येक समाचारपत्रके कार्यालयोंमें सामान्यतया होता ही है। उस कमरेके एक कोनेमें टेलीप्रिण्टर मशीन खटखट कर रही थी। मैं कुरसीपर बैठ गया और फाइल उलट कर पुराने अंक देखने लगा।

मुझे कोई बीस मिनट लगे। मैंने देख लिया कि इधर कुछ दिनोंके भीतर पाकिस्तानके सम्बन्धमें पत्रमें कोई टीका-टिप्पणी नहीं की गयी थी और जब मैं इसकी जाँच कर रहा था, तब मुझे 'फ्री प्रेस' की शैलीका भी थोड़ा सा आभास हो गया। आगेका काम सरल तो नहीं पर बहुत कुछ सीधासादा और साधारण-सा रह गया।

अवश्य ही मैंने यह नहीं सोचा कि मैंने कोई बड़ा काम कर डाला किन्तु अग्रलेख मैंने लिखकर वहीं रख ही दिया और साथ ही एक पुर्जेपर यह भी हिदायत लिख दी कि यदि बादमें कुछ और रात बीतने पर भी श्रीनिवासम्का लेख प्राप्त हो जाय तो अग्रलेख रोक लिया जाय। निदान निर्धारित समयपर पहुँचकर मैं भोजनमें भी सम्मिलित हो सका। मेरे इस कृत्यका भी सदानन्दके मनपर अच्छा असर पड़ा और जब मुझे

कोई आदमी यदि दृढ़तापूर्वक बाहरका एक काम उठा लेता है और उसपर डँटा रहता है तो लोगोंको उसकी बात सुननी ही पड़ती है। फिर भी ऐसे पत्र यदि किसी संस्था या समूहसे सम्बद्ध नहीं हो जाते तो आधुनिक पत्रकारकलाके लिए जिन साधनोंकी आवश्यकता है, उनका जुटाना उनके लिए सम्भव नहीं हो पाता। सचमुच इस पेशेमें कुछ लोगोंको मिल-जुलकर काम करनेकी आवश्यकता होती है, भले ही अल्पसंख्य रूपसे ऐसा किया जाय, तभी सुयोग्य लेखकोंका एक अच्छा, मजबूत दल उनकी ओर आकर्षित हो सकता है।

आजके सार्वजनिक जीवनमें अद्वितीय क्षमतावाला कोई बड़ी हस्ती नहीं है, इसलिए गांधीजीके 'यंग इण्डिया' तथा 'हरिजन', श्रीमती एनी बेसेण्टके 'न्यू इण्डिया' तथा मौ मुहम्मदअलीके साप्ताहिक पत्रों जैसे अखबार निकलनेकी आशा हम नहीं कर सकते। अब किसी विचार या सिद्धान्तके बजाय जानकारीपर अधिक जोर दिया जाने लगा है और कुल मिलाकर यह स्वागत योग्य परिवर्तन है। हाँ, इस बातकी सावधानी हमें अवश्य रखनी है कि विचारों और विश्वासोंका स्थान व्यक्तिगत स्वार्थोंको न मिल जाय। १९३०–३१ के बादसे समाचारपत्रोंका स्वामित्व उच्च मध्य-वर्गके हाथसे निकलकर, जिसमेंसे राष्ट्रके चिन्तक तथा विशिष्ट नेता उत्पन्न होते थे, व्यवसायियोंके हाथमें आ रहा है। उत्पादनका व्यय बहुत अधिक बढ़ जानेके कारण यह काम सामान्य आदमीके बूतेके बाहरकी चीज बन गया है। ऊँचा स्तर बनाये रखना अब पत्र-कार्यालयमें काम करनेवाले लेखककी ईमानदारी एवं उच्च नैतिकतापर ही बहुत कुछ अवलम्बित है और अक्सर इस कामका बोझ इतना अधिक होता है कि वह उसे बरदाश्त नहीं कर सकता।

लिखनेकी कला

यह एक तरहसे शैलीका प्रश्न है। जैसे जैसे अंग्रेजी भाषाका विशिष्ट ज्ञान कम होता जा रहा है, वैसे वैसे आलंकारिक पदावलियों तथा अस्पष्ट अर्थोंवाले शब्दोंका प्रचलन बढ़ता जा रहा है। कुछ लेखक एक ही

अच्छे ढंगसे उसे लिखा है अथवा आनेको कितना बड़ा विद्वान् और जानकार दिखानेका प्रयत्न आपने किया है। सबसे पहले आपका तर्क उसकी समझमें आना चाहिये और यह जान लेनेमें उसे कठिनाई न होनी चाहिये कि आखिर आप कहना क्या चाहते हैं, आपका दृष्टिकोण क्या है। सबसे अच्छे लेखकके सम्बन्धमें यह धारणा या यह प्रतीति बादम ही होती है कि उसमें अपने विचार बहुत अच्छे ढंगसे प्रकट किये गये हैं। लेखककी प्रशंसाका भाव बादमें ही उत्पन्न होना चाहिये।

फिर भी मैं प्रत्येक भारतीय लेखकको उस खतरेकी चेतावनी दे देना चाहता हूँ जो भारतीय पत्रकारोंमें उत्पन्न हो सकता है—वह है सीधी और सरल भाषाके नामपर ग्राम्य या विशुद्ध प्रान्तीय शब्दोंका प्रयोग करना। हमें अंग्रेजी ढंगकी कृत्रिम भाषा या अनुपयुक्त मुहावरोंका भी प्रयोग न करना चाहिये। उदाहरणके लिए 'मेरे कन्धोंपर इसकी जिम्मेदारी है' के बजाय 'मेरे सिरपर, या मेरे ऊपर इसकी जिम्मेदारी है' बेहतर होगा। शुद्ध, सरल और मुहावरेदार भाषामें लिखना सीखनेमें आपको कुछ देर लग सकती है, किन्तु इससे पाठकोंके लिए बड़ी आसानी हो जाती है।

समाचारपत्रोंके प्रसारके कारण भारतीय भाषाओंकी शैली अब अधिक सरल और समझने योग्य हो गयी है या होती जा रही है। साहित्यकी भाषा या साहित्यकी शैली और सामान्य व्यवहारकी भाषामें अब अधिक अन्तर नहीं रह गया है। अंग्रेजीके लेखोंमें भी मैं अब लोगोंकी प्रवृत्ति यथार्थ लिखने और बकनेकी देख रहा हूँ किन्तु थोड़ी-सी असमर्थताके कारण इसमें कुछ बाधा पड़ रही है। यह सत्य है कि आज पहलेसे अधिक अंग्रेजोंका यह विश्वास है कि हम कोई लेखादि लिख सकते हैं। यह बहुत अच्छी बात है बशर्ते कि वे यह भी भलीभाँति समझ लें कि जो कुछ लिखा जाय, स्वाभाविक ढंगसे तथा बिना किसी आडम्बरके लिखा जाय।

कि मैंने खुद ही अपनी यह गलती समझ ली जिससे अब दूसरोंको भी इसकी हानि या अनौचित्य समझानेमें समर्थ हो सका।

यह एक दुर्भाग्यकी बात है कि आज यदि आप उस व्यक्तिको जो रिपोर्टर बनना चाहता है यह बात समझा देनेकी चेष्टा करें कि उसके लिए शीघ्रलिपिका जानना आवश्यक है, तो बड़ी मुश्किलसे ही आप इसमें सफल हो सकेंगे। लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारतीय पत्रोंके ९० प्रतिशत रिपोर्टर ऐसे हैं जो शीघ्रलिपि नहीं जानते। इसी तरह पत्रकार बननेकी आकांक्षासे प्रेरित ऐसा व्यक्ति मिलना मुश्किल है जो यह बताये जानेपर अपना मुँह न बनाता हो कि उपसम्पादक बननेके लिए प्रूफ-संशोधनका काम जानना, कापीमें कर्त्ता क्रियाका सम्बन्ध ठीक करना, लिंग-सम्बन्धी गलतियों सुधारना तथा दूसरोंकी रचनाओंको अच्छी भाषामें पुनः इस तरह लिख देना कि अर्थका अनर्थ न होने पाये और अपनी विवेकशक्तिका प्रयोग करते हुए भी किसीके ऊपर अपनी राय न लादनेका प्रयत्न करना परम आवश्यक है।

इस सारी स्थितिका मुख्य कारण यह है कि दुर्भाग्यवश भारतीय समाचारपत्रोंका प्रारम्भ गलत ढंगसे हुआ। शायद तत्कालीन परिस्थितियोंमें ऐसा होना अनिवार्य था। प्रारम्भमें समाचारपत्र ही यह जरिया था जिससे सरकारकी नीतिके विरुद्ध भावना प्रकट की जा सकती थी। प्रामाणिक, पुष्ट मत प्रकट करनेका साधन वह बादमें बना। फिर अलग अलग मत प्रकट करनेके भिन्न-भिन्न साधनके रूपमें उसका विभाजन हो गया। सार्वजनिक मतका सजीव साधन बनना अभी उसके लिए बाकी ही है। इसकी संवृद्धिमें जो रुकावट पड़ रही है, उसका एक निश्चित कारण तो निस्सन्देह यही है कि देशमें शिक्षित व्यक्तियोंकी तादाद थोड़ी ही है। दूसरा कारण जो सम्भव स्पष्ट इसके लिए जिम्मेदार है, भारतीय पत्रकारीका प्रारम्भ करनेवाले पुराने महानुभावोंका इस बातपर जोर देना है कि पत्रकारी कोई पेशा न होकर जीवनका एक पवित्र लक्ष्य या व्रत है।

स्तरके कामसे भी छुकाता है जो समाचारपत्रोंमें अधिकांश रूपमें करना पड़ता है। इसके सिवा प्रायः यह भी होता है कि काम सीखनेके लिए आये हुए व्यक्तिका ध्यान 'किसी अच्छे कामके लिए कुछ कर डालने' की इच्छा तथा 'कुछ इधर-उधरकी' बातें सम्भके आकर्षणके बीच बँट जाता है।

अन्य किसी भी पेशेमें इतने अधिक परिश्रम और कठिन अध्ययनकी आवश्यकता नहीं पड़ती अन्य किसी भी पेशेमें इतने अधिक विषयोंकी तरफ ध्यान नहीं देना पड़ता और न अंधाधुन्ध काम करनेके ऐसे अवसर ही आते; साथ ही खेद है कि घोर परिश्रम और गम्भीर अध्ययनके लिए इतना कम पुरस्कार भी अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। मैं यह भी सोचता हूँ कि हम लोग जो समाचारपत्रोंमें लिखते रहते हैं, अक्सर यह भूल जाते हैं कि हमारे लिखनेका उद्देश्य यही है कि लोग उसे पढ़ें। आजके अंग्रेजी पत्रोंके बहुतसे लेखकोंका उस भाषाका ज्ञान औसत दर्जेके पाठकोंसे बहुत बढ़ा हुआ है। 'संयुक्त कर्नाटक' के श्री एच वी मोहरे मुझसे यह कहते कभी नहीं थकते कि इस देशमें अंग्रेजी पत्रोंका समाप्त होना निश्चित है, क्योंकि अंग्रेजीके लेखक यह सीधी सी बात समझ नहीं पा रहे हैं कि लेखोंमें ऐसे कठिन शब्दोंका प्रयोग करना व्यर्थ है *जिन्हें समझना पाठकोंके बूतेके बाहर हो।*

देशी भाषाओंके पत्र इस दृष्टिसे विशेष लाभजनक स्थितिमें हैं क्योंकि वे ऐसी भाषाका प्रचलन कर रहे हैं जो बोलचालकी भाषासे बहुत कुछ मेल खाती है। प्राचीन कालकी तुलनामें यह एक नया परिवर्तन हम देख रहे हैं। फिर भी मैं नहीं समझता कि समस्या इतनी सरल है जितनी ऊपरसे देखनेपर जान पड़ती है। दोष वस्तुतः ऐसे लेखकोंका है जिनके पास विचारों और तथ्योंकी कमी है, इसीसे वे ऐसी भाषा लिखनेको विवश हो जाते हैं जिसे समझनेमें लोगोंको कठिनाई हो। देशी भाषाके पत्रोंको यदि ऐसी स्थितिका सामना अभी नहीं करना पड़ रहा है तो देर, सबेर उन्हें भी यही दिक्कत उठानी पड़ेगी। सम्पादकीय लेखोंमें

समर्थ होता है। यह बड़े उत्तरदायित्वका काम है। विशेषज्ञ न होनेके कारण हम सभी लोग उन कठिनाइयोंको समझ सकते हैं जो इन विशेषज्ञों द्वारा किये जानेवाले कार्योंके कारण तथा उनके इस आग्रहके कारण उत्पन्न होती हैं कि हमारी और केवल हमारी ही बात सुनी जानी चाहिये। किन्तु इसका एक दूसरा पहलू भी है।

ओरटेगा इ गैसेटने कहा है—"आजका लेखक जब किसी ऐसे विषयपर लिखनेके लिए लेखनी उठाता है जिसका उसने गम्भीर अध्ययन किया है, तब उसे यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि औसत दर्जेका पाठक, जिसने कभी इस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं की, यदि इस तरहका लेख पढ़ता है तो इस गरजसे नहीं पढ़ता कि लेखकसे वह कोई बात सीख सकेगा वरन् उसका इरादा यही रहता है कि मामूली रोजमर्राकी बातोंमें जहाँ लेखक उसकी धारणाओंके विपरीत बात कहता नजर आवे, वहाँ उसे आड़े हाथों लिया जाय।"

अतिविज्ञता और अनभिज्ञता, विशिष्ट ज्ञान और अज्ञानके इन दो छोरोंके बीच मेल करानेके लिए ही समाचारपत्रको प्रयत्नशील होना चाहिये। यद्यपि समाचारपत्रमें काम करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका सहयोग इस कार्यमें अपेक्षित है, फिर भी विशेष दायित्व उनपर है जो उसमें लेख लिखते हैं। और इस कामके लिए कोई भी व्यक्ति अच्छी सामान्य शिक्षा तथा बराबर अध्ययन करते रहनेकी प्रवृत्तिसे बढ़कर और किसी साधन या उपकरणकी आशा नहीं कर सकता।

इस तरहके मासिक पत्रको तो, उपयोगी एवं शिक्षात्मक होनेके लिए, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि उसमें हर तरहके विचार बिना किसी रुकावटके प्रकाशित किये जा सकें और बड़ी सावधानीसे उन सबका संतुलन किया जाय। आजकलकी दुनियामें अक्सर यह होता है कि वर्ग-विशेषकी ही राय सर्वसाधारणकी राय कहकर प्रचारित की जाती है, विशेषकर वहाँ जहाँ राजनीतिक सत्ताका प्रश्न उपस्थित रहता है।

दूसरोंसे प्राप्त लेखोंके सम्बन्धमें भी इसी तरह सावधानीसे विचार किया जाना चाहिये, जिससे विशेषज्ञकी हैसियतसे प्रकट की गयी राय बिल्कुल एकतरफा या वस्तुस्थितिसे बहुत दूर न हो। हालहरमें एक अमेरिकन लेखकने विशेषज्ञकी परिभाषा देते हुए कहा है कि वह ऐसा व्यक्ति है जो 'कमसे कम वस्तुके सम्बन्धमें क्रमशः अधिकसे अधिक ज्ञान प्राप्त करता रहता है।" इसे हम अतिरंजित कह सकते हैं, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि विशेषज्ञकी दृष्टि, बँधे हुए क्षेत्रके छोटेसे छोटे ब्यौरेपर ध्यान संकेन्द्रित करनेके कारण, क्रमशः संकुचित-सी होती जाती है। इसी तरह उन विद्वान् लेखकोंकी बात लीजिये जिनकी विद्वत्तामें अणुमात्र भी सन्देह नहीं, किन्तु जिनकी राय पहलेसे विद्यमान विरोधी भावना या पक्षपातयुक्त भावसे रँगी हुई रहती है। इन बातोंपर तथा ऐसी ही अन्य कतिपय बातोंपर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये, तभी कोई लेख सम्बद्ध विषयपर प्रामाणिक रचनाके रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है।

निर्णयका मुख्याधार

इसलिए यह बात स्पष्ट है कि मासिकपत्रके सम्पादकको मुख्यरूपसे यह देखना पड़ता है कि जो सामग्री प्रकाशित की जा रही है वह गम्भीर तथा उच्च कोटिकी हो, भले ही उसमें विषयका विस्तार अधिक न हो। दैनिक पत्रका प्रधान लक्ष्य प्रायः सभी साधनोंसे ताजा समाचार और मता मत पौढ़में किन्तु कोई भी महत्त्वपूर्ण तथ्य छोड़े बिना प्रकाशित करना है। उसके सम्पादकीय लेखोंसे यह प्रकट होता है कि उक्त समाचारों या

वस्तुएँ हैं और इसकी एक बड़ी वजह यह है कि दैनिक पत्रोंके सम्पादककी तुलनामें उसकी जिम्मेदारी या कामका विभाजन बहुत थोड़ा ही होता है। उसके पत्रके लिए उसकी निर्णायक बुद्धि, आलोचनात्मक क्षमता तथा विषयोंकी जानकारीका बहुत अधिक महत्त्व है।

मासिकपत्रपर उसके सम्पादकके व्यक्तित्वकी छाप, अनेक दैनिक पत्रोंकी तुलनामें काफी अधिक परिमाणमें दिखाई देती है। और इसमें वे सभी तत्त्व मौजूद रहते हैं जो सम्पादककी आत्माके सन्तोष या असन्तोषके कारण बनते हैं। मासिक पत्रमें लेखोंका प्रवेग अधिक संयत होता है, अतः उत्तेजना या उत्साह उस तरह चरम बिन्दुपर नहीं पहुँच पाता जैसा कि दैनिकपत्रके खास समाचारसे होता है। किन्तु सार्वजनिक महत्त्वके सब मामलोंमें कारणभूत तत्त्वोंका निरूपण करनेमें, रोगोंका निदान करनेवाले चिकित्सककी तरह, चिन्ता होती है और साथ ही गहरा सन्तोष भी होता है जब यह पता चल जाता है कि जो निष्पत्ति निकाली गयी थी वह सही निकली तथा जो मत प्रकाशित किया गया था वह उचित एवं महत्त्वपूर्ण साबित हुआ।

पाठकवर्गके अधिक विचारशील अंगको प्रभावित कर या उसकी जानकारी बढ़ाकर ही मासिक पत्र जनताका समर्थन प्राप्त करता है। इसलिए चटोर लोगोंके लिए चटपटी चीजें मुहैय्या करनेका—लेखोंमें सनसनीखेज बात लिखनेका—सवाल ही नहीं उठता। अतः उत्तेजनाके उत्थान-पतनके ऐसे ऊँचे शिखर या गहरी नालियाँ इसमें शायद ही कभी देख पड़ती हों जैसी दैनिक पत्रमें दिखाई देती हैं। मासिक पत्रके सम्पादकके हृदयमें जो तरंगें उठती हैं, उनकी गति अधिक मन्द होती है किन्तु मोटाई-चौड़ाईमें वे बड़ी दूर होती हैं।

इसके सिवा मासिकके सम्पादकको नये लेखकका हैंड निकालनेकी भी बड़ी सूझो होती है। मासिक पत्रमें अनाड़को तथा सम्पादकीय भाबो बनानेकी काफी गुंजाइश रहती है जिससे प्रारम्भिक लेखकका यही मदद मिलती है। सभी प्रसिद्ध लेखकोंके लिए साहित्यिक लेखों तथा कथा

इसलिए कहानी-पत्रिकाके सम्पादकको अपने पाठकोंके मनोभावका भलीभाँति पर्यवेक्षण करते रहना चाहिये। यदि उसका अनुमान ठीक निकलता है तो पत्रिकाकी बिक्री बढ़ जाती है और उसकी अधिक प्रसिद्धि होने लगती है। सम्पादकको अधिक पाठक भी मिल जाते हैं और अधिक अच्छे तथा विख्यात लेखक भी अपनी रचनाएँ उसे भेजने लगते हैं। और यह सब केवल इसी बातपर निर्भर है कि वह कैसी कहानियोंका चुनाव करता है और लेखकोंको कैसे सुझाव देता है।

महत्वपूर्ण विषयोंपर लिखे जानेवाले लेखोंके सम्बन्धमें अच्छे अनुभवी लेखकोंको छोड़कर अन्य सब लोगोंका पथप्रदर्शन करना सम्पादकके लिए आवश्यक है। लेखमें जो तर्क दिये गये हों तथा परिणाम निकाले गये हों, उनमें कोई भूल, असंगति या त्रुटि तो नहीं है, यह देखनेकी योग्यता, कुशल न्याय-विशेषज्ञकी तरह, सम्पादकमें होनी चाहिये। दैनिक पत्रकी तरह जल्दबाजी तो उसे रहती नहीं, अतः इन सब दोषों या कमियोंको दूर करनेमें उसे अपनी परिपक्व बुद्धिका प्रयोग करना चाहिये। यदि लेखक बुद्धि और तर्क-संगत बातोंका कायल हो तो भली भाँति उसकी रचनाका परिष्कार किया जा सकता है और वह पूर्ण बनायी जा सकती है। इसी तरह सम्पादकको यदि किसी विषयपर लेख तैयार करानेके लिए उपयुक्त सामग्री कहीं देख पड़े तो उसे काटकर या एकत्र कर किसी अच्छे लेखकके पास भेज देना चाहिये जिसका अध्ययन कर वह अपने परिपक्व विचार लेखबद्ध कर उसके पास भेज दे।

अनुभवी सम्पादक इस तरीकेसे प्रायः सभी विषयोंके अच्छे लेखकों का अभाव दूर कर सकता है। निस्सन्देह इससे भी सरल उपाय सुप्रसिद्ध लेखकोंके साथ एक तरहका ठेका कर लेना है किन्तु इसमें ज्यादा पैसा खर्च करनेकी आवश्यकता हो सकती है और मासिक पत्रके सम्पादकको प्रायः अधिक धन व्यय करनेका अधिकार नहीं रहता।

इसलिए मासिक पत्रके सम्पादकको हमेशा नये लेखकों तथा नये आलोचकोंको उत्साहित रखना पड़ता है और इसी अरमानसे बिना माँगे

पत्र अपने ढंगके लेख होने चाहिये जिससे उस ढंगके पाठक आकर्षित हो सकें जिनके लिए उक्त पत्र निकाला गया हो।

स्थानका प्रश्न दैनिककी अपेक्षा साप्ताहिकमें कम उठता है और उससे भी कम मासिकमें। किन्तु पाठक ऊब न उठे इस लिये लेख यथासम्भव छोटा ही होना चाहिये, फिर भी उसमें सभी आवश्यक बातों की चर्चा आ जानी चाहिये जिससे उसे पढ़ चुकनेके बाद पाठकको सन्तोष हो सके। पाठकका जी भी न ऊबने पाये और न उसको इस बातकी ही प्रतीति होने पाये कि लेखका पढ़ना बेकार हुआ।

यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिये कि बहुतसे लेखक इन सब दृष्टियोंसे अपनी रचनाओंका मूल्यांकन करनेमें असमर्थ होते हैं और यहीं सम्पादकका सबसे आवश्यक कर्तव्य शुरू होता है। अल्पप्रतिष्ठ लेखकों द्वारा लिखे गये लेखोंको पढ़कर, उनके आधारपर, लेखोंकी अच्छाई, बुराईके सम्बन्धमें निर्णय कर सकनेकी आदत उसे डालनी चाहिये। छोटे किन्तु अपनेमें पूर्ण लेखोंकी इन विशेषताओंकी ओर उसे पूरा पूरा ध्यान देना चाहिये और जिस किसी भी लेखको वह प्रकाशित करना चाहता हो, उसे प्रेसमें देनेके पहले इसी कसौटीपर कसकर देख लेना चाहिये।

सभी लेखोंमें चाहे वे विज्ञानपर हों या राजनीतिपर, यहाँतक कि कहानियों आदिमें भी, सबसे अधिक वांछनीय गुण जो देखा जाना चाहिये यह है कि प्रयुक्त शब्दावलीसे ठीक ठीक और सही अर्थ निकल आता है या नहीं। यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि सम्पादकका मुख्य कर्तव्य पाठकके प्रति होता है, इसलिए उसे अपना पत्र सुपाठ्य एवं मनोरंजक ही नहीं वरन् उपयोगी भी बनाना चाहिये। कोई भी पाठक एक छोटी-सी बात कहनेके लिए प्रयुक्त तथ्यहीन और निरर्थक वाक्य पढ़नेमें अपना समय बरबाद नहीं करना चाहता और न उसे यही पसन्द आ सकता कि लम्बे-लम्बे तीन पैराग्राफ पढ़ लेनेके बाद कहीं जाकर मतलबकी बात समझमें आवे। एक जमाना था जब आदमी

पृष्ठोंके सिवा शेष भागमें विभिन्न विषयोंके दो-तीन या अधिक मुख्य लेख अथवा कहानियाँ होनी ही चाहिये। प्रबन्ध-विभागके लोग कभी-कभी ऐसे लेख प्रकाशित करनेपर भी जोर देने लगते हैं जिनसे या तो पत्रकी बिक्री बढ़े या विज्ञापन प्राप्त हो। इसी तरह पाठक नयी जानकारी (नयी बातोंका ज्ञान) भी प्राप्त करना चाहता है या नयी प्रेरणा चाहता है अथवा केवल मन-बहलाव, जैसा उसका जी चाहे। इसलिए सम्पादकको विभिन्न रुचियोंकी परितृप्तिका ही उपाय नहीं करना पड़ता वरन् उन बातोंकी ओर भी ध्यान देना पड़ता है जिन्हें व्यवस्था विभाग आवश्यक समझता हो।

इन सब बातोंका मतलब यह हुआ कि पत्र या पत्रिकाकी एक-एक इंच जगहका भरपूर उपयोग होना चाहिये और इसीलिए लेखोंकी व्यवस्थाका प्रश्न सामने आता है।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सम्पादकको बड़ी चतुराईसे काम लेना पड़ता है, क्योंकि ऐसे बहुतसे लेखक तथा ग्रन्थकार हैं—इनमें कई बड़े प्रसिद्ध होते हैं—जो अपनी लेखनीसे निकले प्रत्येक शब्दको बहुमूल्य समझते हैं और जिन्हें अपनी रचनाओंमेंसे एक वाक्यका भी हटा दिया जाना बहुत बुरा जान पड़ता है। सम्पादकको अनुभवसे यह बात सीखनी पड़ती है कि ऐसे लेखकोंको किस तरह मनाया जाय या कैसे उनसे बचा जाय।

पाठकोंको आकर्षित करना

दूसरी चीज जिस पर सम्पादकको विचार करना पड़ता है, पाठकका ध्यान अपने पत्रकी ओर खींचनेका प्रश्न है। इसका मतलब यह हुआ कि किसी एक अंकके लिए चुने गये लेखों या कहानियोंमें जो सबसे अधिक मनोरंजक या दिलचस्पीसे पढ़े जाने योग्य हो, उसे ही प्रमुख स्थान मिलना चाहिये और यदि आवश्यकता हो तो उसके लिए अधिक जगहकी भी गुंजाइश की जा सकती है। 'अधिक जगहकी गुंजाइश' से मेरा मतलब प्रत्येक पत्रकी अपनी परम्परा या चल पड़ी हुई प्रथाकी

पास बयेष्ट समय रहता है। बहुतसे लेखकोंकी प्रवृत्ति विस्तृत तथा आडम्बरपूर्ण भाषा लिखनेकी होती है। इससे लेखका मूल्य घट जाता है क्योंकि बहुधा ऐसा होता है कि सामान्य पाठक उसे आसानीसे समझ ही नहीं पाता। इसलिए सम्पादकको लेखका भव या अभिप्राय बदले बिना यथोचित सम्भव हो यथोचित उसकी भाषा सरल बना देना चाहिये। फिर बहुतसे लेखकोंकी यह भी आदत होती है कि वे अपने लेखमें एक ही दलील बार-बार दोहराते रहते हैं। इन पुनरुक्तियोंसे पाठकको भ्रम हो जा सकता है, इसलिए इन्हें दूर कर देना चाहिये। चौथेमें सम्पादकको देखना चाहिये कि कहानीका कथानक प्रस्तुत करनेका ढंग सुन्दर ही न हो सरल भी हो। अवश्य ही यह बात मान ली गयी है कि यदि कोई बड़ा परिवर्तन करना हो या अधिक अंश निकाल देना हो तो लेखककी स्वीकृति पहलेसे ले लेनी चाहिये। लेखकसे पूछे बिना उसके लेखमें नयी बात जोड़ देना या उसका कोई बड़ा हिस्सा निकाल देना सम्पादकके लिए न्याय्य न होगा।

लेखों, कहानियों तथा यात्रा-वृत्तान्तोंका जब उपर्युक्त ढंगसे सम्पादन हो जाय, तब प्रश्न यह उठता है कि अंक-विशेषमें जितनी सामग्री दी जा रही है उसमें कौन लेख किस क्रमसे किस तरतीबसे रखा जायगा। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सबसे महत्त्वपूर्ण या उत्कृष्ट रचनाको प्रथम स्थान मिलना चाहिये। उसके बादका क्रम—ढंग, विषय या समयकी दृष्टिसे—पहलेसे निश्चित होना चाहिये। कारण यह है कि पाठक जब समस्त लेखोंपर सरसरी नजर डाले तो उसे एकतानताका अनुभव न होने पावे—यह न प्रतीत हो कि इनमें सब लेख एक ही तरहके हैं।

लोगोंमें यह धारणा प्रचलित है कि मासिक पत्रके सम्पादकका जीवन और काम शान्त, स्थिर और नीरस-सा है। यह सच है कि दैनिकों, साप्ताहिकों आदिकी अपेक्षा मासिक पत्रके कार्यालयमें आरामके साथ काम करनेकी अधिक गुंजाइश है। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि वह हमेशा या अक्सर हाथपर हाथ धरे बैठा रह सकता है। कितने ही

भाग तीन

सम्बन्धित क्षेत्र

---

१० जन-सम्पर्क तथा जन-संवेदन

भारतमें अभी जन-सम्पर्क तथा प्रचार सम्बन्धी कार्योंकी प्रारम्भिक अवस्था ही है। अमेरिकन संयुक्त राष्ट्रमें ये दोनों बिलकुल स्वतंत्र काम बन गये हैं। ब्रिटिश संयुक्त राज्यमें, यूरोपके अनेक देशोंमें तथा दक्षिण अमेरिकामें ये दोनों विज्ञापन प्रसारित करनेवाली दुनियाके महत्त्वपूर्ण अंग हैं। किन्तु भारतमें उनकी संभावनाओंकी कल्पना भी अभी मुश्किलसे की जा सकी है।

इसलिये ये क्या हैं, प्रवर्तन, विज्ञापन और प्रचारसे उनका सम्बन्ध क्या है, इस सम्बन्धमें बड़ी गड़बड़ी चल रही है। इसलिए यहाँ इन दोनों क्रिया-कलापोंमें, जो परस्पर बहुत मिलते-जुलते हैं, तथा जो अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिए प्रायः ही समाचारपत्रोंका सहारा लिया करते हैं, अन्तर दिखलानेकी चेष्टा की जा रही है।

प्रवर्तन (प्रोमोशन) वह क्रिया-कलाप है जिसका अभिप्राय जनताको आकर्षित करना है तथा जिसका परिणाम कोई व्यापारिक लेन देन —बिक्री आदि—हो।

प्रचार कार्य, (प्रोपेगैण्डा) इन्स्टिट्यूट फॉर प्रोपैगैण्डा एनालिसिस” द्वारा दी गयी परिभाषाके अनुसार, पूर्व निश्चित लक्ष्योंके सम्बन्धमें पृथक् पृथक् व्यक्तियों या व्यक्ति-समूहों द्वारा प्रकट की गयी वह राय या वह कार्य है जिसका लक्ष्य स्पष्टतः दूसरोंकी राय या कार्योंको प्रभावित करना हो।

उद्देश्योंका जनताके ठीक तरहसे न समझ सकनेके कारण असन्तोषकी आग भी अधिक वृद्धि हो जा सकती है। सरकार भी, किसी व्यापारीकी तरह, चाहती है कि उसके निर्वाचक और समर्थक (मुवक्किल और ग्राहक) सन्तुष्ट रहें। इसी तरह अन्य सरकारोंसे भी उसके सम्बन्ध रहते हैं और वह चाहती है कि जहाँतक हो वे उसके लिए सन्तोषजनक बने रहें। तात्पर्य यह कि वह विभिन्न जन समूहोंसे अपने कार्योंका अनुमोदन चाहती है।

यह अनुमोदन तभी प्राप्त हो सकता है जब कार्यपद्धतियाँ तथा योजनाएँ खूब सोच-समझकर निर्धारित या निश्चित की जायें और यह प्रबन्ध भी कर दिया जाय कि विभिन्न जनवर्गोंको उनकी जानकारी हो जाय और वे उन्हें अच्छी तरह समझ भी लें। इस व्यवस्थाका नाम ही जनसम्पर्कव्यवस्था है। इसे कार्यान्वित करनेका काम जिनके सिपुर्द रहता है, उन्हें जनसम्पर्क सलाहकार, जनसम्पर्क-निदेशक या जनसम्पर्काधिकारी कहते हैं। जनसंवेदन (पब्लिसिटी), संविज्ञापन (प्रेस एजेन्सी), विज्ञापन (एडवरटाइजिंग), प्रवर्तन (प्रोमोशन) और प्रचार-कार्य (प्रोपैगैण्डा)—इन सबका सहारा जनसम्पर्क विभागों द्वारा लिया जाता है। समाचारपत्रों जैसी प्रविधियोंसे भी काम लिया जाता है—समाचारोंके रूपमें क्रमबद्ध विवरण भेजे जाते हैं, विशेष पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन किया जाता है, परचे और पुस्तिकाएँ लिखी जाती हैं और रेडियोके भाषण तैयार किये जाते हैं। इनमेंसे बहुतसे कार्य भारतमें भी छोटे पैमानेपर किये जाते हैं। रेडियोसे यहाँ उतनी तत्परतासे काम नहीं लिया जा सकता, क्योंकि उसपर सरकारका एकाधिकार है और पैसा देकर विज्ञापन करानेका प्रयोग, भाषाओंकी विभिन्नताके कारण, सीमित रूपमें ही सम्भव है।

भारतमें जन-संवेदनका कार्य

भारतमें प्रधान रूपसे दो क्षेत्रोंमें—सरकारी तथा बड़ी व्यापारिक संस्थाओंमें—जन-संवेदन कार्यका विकास हुआ है। केन्द्रीय सरकारका

लोकमत राज्यमें और प्रशासनके लिए सद्भावना उत्पन्न करनेमें सहायक होता है।*

इस कार्यक्रमके अन्तर्गत सूचना विभाग समाचारपत्रोंके लिए लघु लेख (नोट) तथा विज्ञप्तियाँ, गैरसरकारी लघुलेख और पृष्ठभूमि बताने वाले लेख तथा फीचर प्रचारित करता है। सालमें लगभग तीन हजार ऐसी विज्ञप्तियाँ, लघुलेख आदि तैयार किये जाते हैं और प्रतिदिन कोई तीन सौ अखबारों, संवाददाताओं आदिके नाम भेज दिये जाते हैं।

पर्चे, रिपोर्टें, पुस्तिकाएँ, फोटोग्राफ, ब्लाक तथा अन्य सामग्री उपलब्ध कर दी जाती है और उसी समयमें लगभग ९० प्रश्नों या पूछताछके प्रश्नोंका जवाब दिया जाता है। सरकारके कतिपय अधिकारियोंके लिए प्रति दिनकी तथा प्रति सप्ताहकी घटनाओंका क्रमबद्ध सारांश तैयार किया जाता है।

एक बड़ा काम है सरकारकी गतिविधिके सम्बन्धमें प्रकाशित किये गये समाचारों आदिकी अखबारोंकी कतरन इकट्ठी करना। देशी भाषाओंके पत्रों तथा पत्रिकाओंके अंश अंग्रेजीमें अनूदित कर दिये जाते हैं। सालमें कोई २२ हजार कतरनोंसे काम उठाया जाता है।

उक्त विभाग पत्र-प्रतिनिधियोंके सम्मेलनका भी आयोजन करता है, एक प्रेसरूम तथा पुस्तकालय चलाता है, विज्ञापन सम्बन्धी भागका संचालन करता है और देहातोंमें तथा सभाओंमें दिखानेके लिए चित्र तैयार करता तथा उन्हें उपलब्ध कराता है, पैसा देकर सरकारी विज्ञापनका प्रबन्ध करता है, रेडियो वार्ता तैयार कर प्रसारित कराता, शहर या राज्यमें आनेवाले परिदर्शकोंकी आवश्यकताओंका खयाल रखता और सम्मेलनों, प्रदर्शिनियों तथा समितियोंका सीमित रूपमें, गैरसरकारी समर्थन कराता है।

इस काममें १० कर्मचारियोंका दल व्यस्त रहता है—संचालक, उप-संचालक चार सहायक संचालक, भाषा-समूहोंके लिए तीन सर्वेदना अधिकारी, और रेडियो इंजीनियर। अमरीके क्षेत्रकी सरकार विभागके इन

*सूचना-विभागकी मार्च १९५१ की विज्ञप्तीसे।

पाते ही हैं। पुरानी आदत और परम्परागत प्रशिक्षणके कारण सरकारी अफसर जनताको अपने कार्यों आदिकी जानकारी करानेसे बहुत हिचकते हैं।

एक व्यावहारिक उदाहरण

बुद्धिमत्तापूर्वक नियोजित अल्पकालीन जन-सम्पर्ककार्यके व्यावहारिक मूल्यका उदाहरण सन् १९५२ में हिस्लाप कालेज (नागपुर) के पत्रकारकला विभागके प्रोफेसर हैरोल्ड ए० इरिन्सपजर द्वारा रखा गया था। "वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज" से सम्बन्ध रखनेवाले दो समूहोंके प्रथम एशियाई सम्मेलनका प्रेस आफिसर (समाचार प्रसारित करनेवाला अधिकारी) बननेके लिए उनसे कहा गया था। यद्यपि इस कामके लिए उन्हें अपेक्षित समय पूर्व सूचना नहीं दी गयी फिर भी अमेरिकाके इस धार्मिक पत्रकार एवं संवादाधिकारीने एक प्रेस-कमेटी बना ली, कामकी पूरी योजना तैयार कर ली, प्रारम्भिक जानकारीकी कुछ बातें समाचारपत्रोंके पास भेजवा दीं और बैठक आरम्भ होनेके एक दिन पहले लखनऊ पहुँच गये, जहाँ दो सप्ताहतक उक्त सम्मेलनकी बैठक होनेवाली थी। उन्होंने समाचारोंके आदान-प्रदानके लिए एक 'प्रेस-रूम' ठीक कर लिया जिसमें दो टाइपराइटर रखवा लिये, टेलीफोन और प्रतिलिपि तैयार करनेवाली मशीन रख ली और प्रतिदिनकी चार रपटोंके पूरे पूरे समाचार भेजवाते थे।

उन्होंने पत्रोंके रिपोर्टरों, पत्रिकाओंमें विशेष लेख लिखनेवालों, फोटो लेनेवालों तथा अन्य पत्रकारोंकी अच्छी सहायता की, जिससे वे बैठकके पूरे पूरे समाचार भेजनेमें सफल हुए। इसीसे इस सम्मेलनकी कारवाईका यथेष्ट हालचाल देशवासियोंको विदित हो सका और सम्मेलन वालोंकी यह इच्छा पूरी हुई कि उनके कामका पता अधिकसे अधिक लोगोंको चल जाय। अन्य लोगोंके भी ऐसे कई सम्मेलन भारतमें हुए हैं किन्तु सर्वसाधारणको उनका कुछ भी हाल विदित न हो सका क्योंकि समाचारपत्रोंके साथ सहयोग करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

जायगा, ज्यों ज्यों ऐसे पत्र-पत्रिकाओंकी भी संख्या बढ़ती चलेगी। अन्य देशोंमें भी राष्ट्रकी आर्थिक स्थितिके अनुपातमें ही उनका अस्तित्व होता है। पहलेके जमानेमें जब रोजगारकी चहल-पहल बढ़ जाती थी, तब ये पत्र भी अधिक देख पड़ते थे और एक तरहसे शौककी चीज समझे जाते थे किन्तु जब समय खराब आता था, तब इनकी संख्या घट जाती थी। किन्तु पिछले दशाब्दमें स्थिति असन्तोषजनक होनेपर भी उनका अस्तित्व कायम रखा गया है, क्योंकि व्यापारिक संस्थाओंके प्रबन्धकोंने जन-सम्पर्ककी दृष्टिसे उनका महत्त्व समझ लिया है।

इन पत्रोंका काम कारखानोंमें काम करनेवालों तथा मालिकोंका पारस्परिक सम्बन्ध सुधारना और किसी व्यापारिक संस्थाके प्रति उसके ग्राहकों या छोटे व्यापारियोंमें सद्भावना बढ़ाना तथा अधिक माल बिकवानेमें इन छोटे व्यापारियों एवं वितरकोंकी सहायता करना है।

अन्य पत्रोंकी तरह इन पत्रोंके उत्पादनमें भी सम्पादकीय कौशलकी आवश्यकता पड़ती है और जन-सम्पर्क तथा जन-संवेदनके मौलिक सिद्धान्तों का समझना भी आवश्यक होता है। समाचारोंका संग्रह करने तथा जो लेख उनमें प्रकाशित होते हैं उन्हें लिखवानेके लिए रिपोर्टरों और लेखकोंकी आवश्यकता होती है। कापीका सम्पादन करने और ब्लाक बनवानेके लिए फोटो चित्रोंका चुनाव करने तथा ऐसे ही अन्य कामोंके लिए सम्पादकोंकी आवश्यकता पड़ती है।

साउथ मद्रास इलेक्ट्रिक सप्लाइ कारपोरेशन, तिरुचिरापल्लीके जन-सम्वेदनाधिकारी श्री आर परयास्वामीने प्रदर्शनीमें भाषण करते हुए कहा था कि नैतिकताका निर्माण करनेकी दृष्टिसे अथवा मानसिक तथा शैक्षिक जानकारीका प्रसार करनेके साधनके रूपमें और कर्मियों एवं प्रबन्धकोंके बीच सौहार्द बढ़ानेकी शक्तिके रूपमें "संस्था-पत्रिका एक बहुमूल्य उपकरण है।"

श्रीपरयास्वामीने खुद अपनी ही कम्पनीके पत्र 'इलक्ट्रोलाइट'की चर्चा की और कहा कि यदि इस पत्रके कारण जनताके एक अंश मागने

किन्तु इस तरहकी विशेष ढंगकी पत्रकारी भारतमें अभी छोटे पैमानेपर ही देख पड़ती है। जो लोग इस वृत्तिका अनुसरण कर रहे हैं, उनमें अभी एकताकी प्रबल भावना जागरित नहीं हुई है और न वे अपनी कोई संस्था स्थापित करनेकी आवश्यकताका ही अनुभव करते हैं, क्योंकि इन सम्पादकों तथा जन-संवेदन या जन-सम्पर्कके संचालकोंको एक सूत्रमें गठित करनेके लिए अभीतक किसी संस्थाका निर्माण नहीं हुआ है।

कभी-कभी उससे थोड़ी सी हानि भी हुई है, उदाहरणके लिए उस समय जब कोई पत्रकार ऊपरी दिखावेके फेरमें पड़कर अपनी विवेकबुद्धिका भी कुछ भाग खो बैठता है।

भारतीय समाचारपत्रोंके रूप रंग आदिकी समीक्षा करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनकी शैली, छपाई और समाचार देनेका ढंग आदि पश्चिमके पत्रोंसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। ताजे और मुख्य समाचार प्रथम पृष्ठपर, अग्रलेख आदि बीचवाले बाईं ओरके पृष्ठपर, खेल-कूदके समाचार अन्तिम पृष्ठपर, आदि बात प्रायः सभी पत्रोंमें समान रूपसे पायी जाती हैं, यद्यपि पत्र-संचालकोंकी इच्छाओंके अनुसार तथा पाठकोंको आकर्षित करनेकी गरजसे इसमें थोड़ा हेर-फेर भी कर दिया जाता है।

छपाईकी परिभाषा

मुद्रण या छपाईका क्या अर्थ है, यह भी हम बता देना चाहते हैं जिससे ऊपर कही हुई बातें और स्पष्ट हो जायें। मुद्रण, उसके प्रत्येक रूपमें, एक आदमी या थोड़ेसे आदमियोंके विचार या विचारोंको बहुतसे लोगोंतक पहुँचानेकी इच्छाका स्थूल रूप है। यह बोलनेकी ऐसी क्रिया है जिसमें आवाज तो एक स्थानसे दूसरेतक नहीं पहुँचायी जा सकती किन्तु उसके संकेत फिरसे उत्पन्न किये जा सकते हैं; जिसमें किसी वस्तु या घटनाका वास्तविक दृश्य तो स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता किन्तु चित्रण और वर्णनमें उसकी याददाश्तको चिरस्थायी बनानेका बुद्धिसंगत तरीका फिरसे उत्पन्न किया जा सकता है। यह चित्रित करने या खोदकर तस्वीर आदि बनानेका काम नहीं कर सकता किन्तु यह रंगकर या खोदकर बनाये हुए चित्रका लाखों आदमियों द्वारा देखा जाना संभव बना दे सकता है जिसे साधारणतया वे कदापि न देख सकते। इसलिए जब किसीके प्रकट किये हुए विचार (यंत्र और मशीनकी सहायतासे) इस रूपमें बहुतसे पाठकोंके पास, उन्हें आकृष्ट करनेके लिए, पहुँचा दिये जाते हैं तो इसे ही हम 'मुद्रण' कहते हैं। ये

और वह मुख्य या मूललेख जो आपने स्वयं लिखकर भेजा है। बनाव सजाव करनेवाला आदमी, जो अपने पत्रकी पद्धति जानता है, चाहे वह दैनिक पत्र हो या मासिक-साप्ताहिक शीर्षकोंको ठीक करता तथा उनके बगलमें लिख देता है कि किस तरहका और कौन टाइप उनमें दिया जायगा।

दो-चार तरहके मासिक या साप्ताहिक पत्र यदि उठाकर देखें तो आपको विदित होगा कि बनाव-सजावके, सुन्दर ढंगसे छपनेकी पद्धतिके, कितने अधिक प्रकार सम्भव हैं। सचमुच यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि उन सब बन्धनों तथा रुकावटोंके बावजूद जिनका ध्यान टाइप आदि सजानेवालेको रखना पड़ता है, कोई भी दो आदमी आपके लेख, शीर्षक और ढंगके लिए बिलकुल एक ही तरहका बनाव सजाव निर्धारित न करेंगे।

प्रत्येक पत्रका अपना एक निराला ढंग या तरीका होता है—या कमसे कम होना चाहिये। यदि न हो तो फिर पत्रका सारा रूप रंग मुद्रककी कृपापर निर्भर रहता है। वह यदि प्रशिक्षित एवं कुशल व्यक्ति न हुआ तो फिर ईश्वर ही खैर करे!

जबतक शीर्षकका टाइप ठीक किया जाता है और कम्पोजिटर उसे कम्पोज करता है, तबतक आपकी लेख भी कम्पोज होता रहता है जिसमें अभिरुचि बढ़ानेके लिए प्रस्तरोंके ऊपर उपशीर्षक भी रहते हैं। निदान जब सारा मैटर तैयार हो जाता है तो पहली बार उसका प्रूफ उगाया जाता है। जब उसका संशोधन आदि हो चुकता है तो किसी एक पृष्ठपर आपका लेख, अन्य लेखोंके साथ, बैठा दिया जाता है (हाँ, यदि आप इतने भाग्यशाली हुए कि सारा पृष्ठ आपको ही मिल जाय, तब बात दूसरी है।) और यदि पत्र बड़ा तथा साधनसम्पन्न हुआ तो पृष्ठका स्टीरियो बना लिया जाता है। यह एक तरहकी अर्द्धचन्द्राकार तश्तरी-सी होती है, जिसमें एक बारमें एक पृष्ठ आता है, और जो ठीक ठाक करनेके बाद मुद्रण-कक्षके सिलिण्डर (बेलन) के चारों तरफ

गढ़ना और बात है तथा नागरी वर्णमालाके ६०० सकेतोंके लिए जिन मेंसे कितने ही ऊपर, नीचे या बगलमें रखे जाते हों, टाइपोंके रूप बनाना बिलकुल दूसरी बात है। फिर इसके साथ यह भी विचार कीजिये कि भारतमें एक-दो नहीं, दर्जनों भाषाएँ हैं जो संस्कृत या अरबी लिपिपर आश्रित हैं और प्रायः हर एकमें सीधी या टेढ़ी लकीरों तथा गोलाईवाले संकेतोंमें भिन्नता है तो मालूम होगा कि देशी भाषाओंके समाचार पत्रोंको हाथसे कम्पोज करनेके मन्दगतिवाले तरीकोंसे मुक्ति दिलानेका कार्य कितना महान् था। सचमुच ही यह दुनियामें मुद्रणकी बड़ीसे बड़ी सफलताओंमेंसे एक है।

नूतन यन्त्रावलीका प्रयोग

द्वितीय महायुद्धके बादके वर्षोंमें भारतको मुद्रण सम्बन्धी आधुनिक यन्त्रोंकी स्थापनाका अवसर मिला। पश्चिमके देश माल भेजनेके लिए उत्सुक थे और पूरबवाले माल मँगानेको, इसीसे मुद्रण सम्बन्धी नवीन यन्त्रोंके मामलेमें भारत अपनी स्थिति अधिक सुदृढ़ बनानेमें समर्थ हो सका। लाइनोटाइप, इंटरटाइप तथा मोनोटाइप मशीनोंकी सहायतासे कम्पोजिंगका काम अधिक सुविधाके साथ किया जाने लगा है। सैकड़ों नहीं तो दर्जनों अखबारोंमें रोटरीसे छपाई होने लगी है और अलग अलग कागजके बजाय बेलनकी तरह लपेटे हुए कागजका प्रयोग किया जाने लगा है। रोटरी मशीन चतुर यन्त्रविदोंकी उत्कृष्ट कारीगरीका नमूना हैं किन्तु ये काफी महँगी पड़ती हैं इसलिए कुछ ही अखबार इन्हें मँगा सकते हैं। कम्पोजिंग आदिके काममें सहायता पहुँचानेके लिए अन्य मशीनोंका भी प्रयोग होने लगा है, जैसे स्टीरियो बनानेके उपकरण, इंकिंगके लिए ब्लाकों तथा एचरोल, ब्लाक तथा मार्डर, इत्यादि। इनके सिवा, और भी कई तरहके यन्त्रोंसे काम लिया जाने लगा है जिससे भारतीय छापेखानोंकी स्थिति अधिक अच्छी हो गयी है। ये मशीनें हैं— भाँजनेकी मशीन, सिलाईकी मशीन, किनारा काटनेकी मशीन, प्रूफ उठानेके साधन, कैमरा और ब्लाक बनानेवाली मशीन इत्यादि।

इस तरह छपी जाती है कि पाठक उसकी ओर आकृष्ट हो जाय। पृष्ठ कैसा हो, यह बहुत कुछ उसके पाठकपर निर्भर है, ठीक उसी तरह जिस तरह पाठक कैसा हो, यह बात उस पृष्ठपर अवलम्बित है। छपे हुए पृष्ठमें शब्दोंके बीच काफी जगह (स्पेस) रहती है, शीर्षक, स्तम्भ, विज्ञापन, रूल तथा बार्डर, मोटा टाइप, सादा टाइप, इटैलिक, हस्तलिपिका टाइप, चित्र, पाद-टिप्पणियाँ तथा बेलबूटे आदि रहते हैं, यद्यपि सब चीजें एक साथ नहीं होतीं और सब पृष्ठोंपर नहीं होतीं। मुख्य बात यह है कि छपनेकी कम्पोज की हुई सामग्री रहती है और उसके नीचे कागज रहता है—दोनोंकी एक सामंजस्यपूर्ण इकाई होती है। यदि दोनोंमें मेल और अनुरूपता न हो तो इसमें अवश्य ही किसी न किसीका दोष होगा।

किसी पत्रकी छपाई और सजावटका ढंगमात्र देखकर बताया जा सकता है कि यह कौन-सा पत्र है, भले ही उसका नाम कहीं देखनेको न मिले। बनाव उनाव बहुत कुछ इस बातपर निर्भर करता है कि सामग्री किस विषयकी है। पढ़कर केवल एक दिन रखे जानेवाले दैनिक पत्रकी छपाई सफाईका ढंग स्पष्ट मासिक पत्रसे जुदा होता है जिसके अधिकांशमें लेख तथा आलोचनात्मक निबन्ध आदि रहते हैं।

सनसनीखेज समाचारके लिए अधिक आडम्बरपूर्ण प्रदर्शनकी आवश्यकता होती है—पृष्ठके एक किनारेसे दूसरे किनारेतक पताका शीर्षक, बड़ा टाइप, मोटे मोटे उपशीर्षक फोटो चित्र, दो कालमके शीर्षक और बाक्स या मंजूषा (स्तम्भके बीचका ऊपर नीचे रूल लगा कर पृथक् किया हुआ सम्पुट या विज्ञापहकी चौकका वह स्थान जिसमें यथाधारण महत्वके समाचार दिये जाते हैं)। यदि कोई वैज्ञानिक लेख हो, जिसमें बुद्धिसम्मत तर्क या कथन हों, आँकड़े हों, आमिनिर्देश हों, तो उसका मुद्रण शान्तिमय ढंगसे, अध्ययनके वातावरणके उपयुक्त, होना चाहिये। यह सत्य ही है कि भिन्न भिन्न पत्रोंमें भिन्न भिन्न वृत्तान्त

छमेशाके लिए कर गया किन्तु भारतमें अब भी पृष्ठोंके बनाव उनावमें कल्पनासे बहुत कम काम लिया जाता है।

सबसे मनहूस-सा दिखाई पड़नेवाला पृष्ठ सम्पादकीय पृष्ठ होता है। अन्य पृष्ठोंकी तरह इसे भी, किन्तु किसी दिखावके, आकर्षक बनाना चाहिये किन्तु प्रायः ऐसा किया नहीं जाता। सनसनी फैलानेका प्रयत्न किये बिना भी विभिन्नता आसानीसे दिखाई जा सकती है किन्तु हमारे दैनिक पत्रोंमें अभी यह नहीं हो रहा है।

किसी पत्रके बनाव-उनावमें एक मुख्य बात यह भी है कि कौन-सा और किस आकारका टाइप चुना गया है। यह बनाव-उनाव पत्रमहके कतिपय अँग्रेजी पत्रोंके 'ठोस मार' ढगसे लेकर बहुसंख्यक दैनिकों तथा साप्ताहिकोंके 'शान्त प्रशान्त' ढगतकका हो सकता है। आज विभिन्न तरहके शीर्षकवाले टाइप तथा उपयोगी बेल-बूटे (बॉर्डर) प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं है और पैसा भी अधिक नहीं देना पड़ता।

मासिक पत्रिकाओंका मेक अप

मासिक पत्रोंका बनाव ठनाव दैनिक पत्रोंकी अपेक्षा अधिक सरल होता है, यद्यपि दैनिक भी चाहे तो अच्छे प्रशिक्षित मुद्रण-पण्डितकी सहायतासे, रूप-रंग आदिका अपना विशिष्टत्व—वह सूक्ष्मतम जो केवलों, सम्पादकीय शैली और टाइपोंके प्रदर्शनके संयुक्त प्रभावसे उत्पन्न होता है—अक्षुण्ण बनाये रखते हुए भी, क्रान्तिमय सुधार कर सकता है।

मासिक पत्रोंके शीर्षक फुरसतके साथ ठीक किये जा सकते हैं। समयकी बाधा न होनेसे उसमें वैसी कोई कठिनाई नहीं होती। हर तरहके टाइप और विभिन्न प्रकारके ढंग अपनाकर देखे जा सकते हैं और अन्तमें जो सबसे अधिक सन्तोषजनक तरीका जान पड़े उसे ही रखनेका निश्चय किया जा सकता है। बहुतसे दैनिक पत्रोंके लिए इसके निकटतक पहुँचनेका केवल एक ही तरीका है—अपनी विशेष शैली या पद्धतिका अनुसरण करते रहना और शीर्षकोंके लिए सुन्दर टाइपोंका प्रयोग करना। 'न्यूयार्क टाइम्स' तथा 'लन्दन टाइम्स' को देखनेसे

दीजिये और नामके प्रत्येक अक्षरके दोनों तरफ, बीचमें, थोड़ी थोड़ी स्पेस (जगह) छोड़ दीजिये, तो किसी तरहकी तोड़ मरोड़ किये बिना ही पत्रिका महत्त्व बढ़ जायगा।

वस्तुतः सब तरहका टाइप बैठाने या कम्पोजिंगका काम सामञ्जस्य-पूर्ण मेल बनाये रखनेका काम है। अच्छी कम्पोजिंगमें एक तरहका पेशा 'झुकाव' सा होता है जिसकी परिभाषा करना तो कठिन है किन्तु जब यह मौजूद रहता है तो उसे पहचानना कोई कठिन काम नहीं। यह केवल सन्तुलनका प्रश्न नहीं है, क्योंकि आजकल कम्पोजिंगके अधिक आधुनिक तरीकोंमें सन्तुलनका नाश होना कदाचित् सबसे अन्तिम प्रभावकी बात होगी। फिर भी उसमें एक तरहकी लय या सामञ्जस्य तो है ही जिसमें उचित ढगसे उतार-चढ़ाव हो। टाइप बैठाने और बनाव-ठनावके सम्बन्धमें कई पाठ्य-पुस्तक निकली जा चुकी हैं। पुस्तकोंकी किसी भी बड़ी दूकानसे पत्र भेजकर उन्हें मँगा लेना कठिन न होगा।

''दीपक' शब्द आजकल अयथार्थनाम (मिसनोमर) हो गया है। इण्डियन प्रिंट एण्ड पेपर' के एक लेखमें कहा गया था कि 'दीपक नामकी कोई चीज ही नहीं रह गयी है'' और यह दिखलानेके लिए उसमें लेखका दीपक शीर्षस्थान माने ऊपर न देकर उसके अन्तमें नीचे दिया गया था, जो तर्कसंगत था और किसी भी तरह विसंगत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इधर कुछ वर्षोंसे ऐसे बहुतसे नियम जो पहले अनुल्लंघनीय माने जाते थे, परित्यक्त कर दिये गये हैं और इसका परिणाम पाठकके लिए बड़ा आह्लादकारी हुआ है, मले ही वह मुद्रण-शीर्षकके बारेमें कुछ जानता हो या न जानता हो।

बनाव ठनाव करनेवाले व्यक्तिको मासिक पत्रिकामें दो स्तम्भ होनेपर चुनाव करनेका अधिक मौका रहता है। यहाँ वह विचारोंके अधिक बड़े दायरेसे काम ले सकता है। दोनों स्तम्भोंके आर-पार एक सिरेसे दूसरे तक, या पहली पंक्ति दो कालममें तथा दूसरी केवल एकमें रखी जाय, दीपक ऊपरकी ओर और उपदीपक पृष्ठके नीचे या दीपक प्रथम

टाइप

कपोज करनेके नये तरीकेकी चर्चा करनेके पहले, जहाँ बीस वर्ष पहलेके निश्चयोंका बार बार उल्लंघन किया जा रहा है हमें उस मुख्य वस्तु, टाइप के ही सम्बन्धमें विचार कर लेना चाहिये, जिसका उल्लेख ऊपर कई बार आया है। यह ऐसा विषय है जिसका वर्णन करनेमें कई जिल्दें भरी जा सकती हैं और जिसका न आकर्षण समाप्त होता है और न कुछ नयी शिक्षा देने, नयी जानकारी करानेकी क्षमता।

मोटेमें, टाइप दो प्रकारका माना जा सकता है—पुराने नमूनोंका टाइप और नये नमूनों या ढंगका टाइप। तीस वर्ष पहले टाइपके जो नमूने प्रचलित थे उनका प्राधान्य उसके पहले लगभग पचास वर्षोंसे चला आ रहा था। इसके बाद परिवर्तन न हुआ, इतना व्यापक कि सुरुचि और सुप्रतिष्ठित धारणाओंपर कठोर आघात हुआ, फिर भी उसमें ताजगी लानेकी इतनी शक्ति थी कि टाइपोंका प्रयोग करनेवालोंको स्थितिपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करना पड़ा और अपनी विविध पद्धतियोंमें इस हलचल संयोजन करनेको बाध्य होना पड़ा जिसकी उन्होंने पहले कल्पना भी न की होगी। परिवर्तन न पहले यूरोपकी युद्ध भूमिपर शुरू हुआ और जब प्रथम महायुद्धकी समाप्तिके साथ प्रथम आघातका अन्त हुआ तब "हर चीज मध्यमें तथा सब पंक्तियों समान स्तरपर रखने" का तरीका अस्थायी रूपसे परित्यक्त कर दिया गया और उसका स्थान लिया 'परिवर्तनके लिए कुछ भी अपनाने' को नयी अनोखी प्रवृत्तिने। धीरे-धीरे साम्यकी स्थिति उत्पन्न हुई और तब यह अनुभव किया गया कि दोनों नमूने या प्रकार साथ साथ सद्भावनापूर्वक चल सकते हैं।

परिवर्तन और उसका कुछ अंश सूचित करनेके लिए नये टाइपके नमूने सामने आये। पहले तो उन्हें देखकर लोगोंकी भौंह चढ़ गयी और उनसे उन्हें कुछ परेशानी सी हुई किन्तु परिवर्तन रोकना सम्भव न था। आज वह युगधर्मका अंग बन गया है जिससे उसकी समग्रता बढ़ गयी है और उसकी शक्ति भी।

जिससे उसकी तीव्रातितीव्र आलोचकोंका भी सन्तोष हो सके—मुद्रकोंका तथा प्रकाशनकार्य करनेवालोंका।

कदाके पत्रोंमें सीधे स्तम्भों और सामान्य, मध्यान्त शीर्षकोंके दिन समाप्त हो गये। कल्पनाको पूरी छूट मिल गयी है।

चित्रोंको अधिक महत्त्व दिया जाता है, शीर्षक बदलते रहते और गौण शब्दोंमें बाहर काटते रहते हैं लेखका मूल भाग माना बादमें समाप्त आनेपर इधर उधर कहीं रख दिया जाता है, यद्यपि सावधानीसे समीक्षा करनेपर मालूम होगा कि स्वतन्त्र और सरल बनाव सजाव अक्सर छोटी छोटी चीजोंपर बहुत बारीकीसे ध्यान देनेका ही परिणाम होता है। इस तरहके बनाव-सजावमें टाइप, ब्लाक तथा सदेश, तीनोंकी ओर एक समवेत पूर्णाशके रूपमें अधिकसे अधिक ध्यान देना आवश्यक होता है। वह एक धन एक, धन एक मिलाकर तीन होना ही नहीं, वरन् उससे कुछ अधिक वस्तु है। वह एक ऐसा समूचा पदार्थ या पूर्णांश होना चाहिये जिससे यह मालूम होता हो कि जो कुछ कहा गया हो और उसका जो कुछ आशय हो, पाठक टाइप या ब्लाकको देखकर बिना उसका अनुसरण कर सके। मतलब यह कि पाठक द्वारा, प्रायः अचेतन रूपसे, वह सब कुछ एक ही प्रकारके रूपमें स्वीकार कर लिया गया हो।

पाठकने देखा होगा कि हालमें एक तरीका यह चल पड़ा है कि ब्लाककी छपाई कागजके किनारेसे आगे बढ़ जाने दी जाती है। इसके लिए अंग्रेजीका विशिष्ट शब्द है "ब्लीड आफ" (बह निकलना)। जब पहले पहल यह देख पड़ा तो समस्त मुद्रणजगत्में इसकी भरमार हो गयी, जिससे उसमें एक नवीनता एक ताजगी आ गयी जिसकी बड़ी आवश्यकता थी। सामान्य छपाईसे इस 'बहिर्गमन' की छपाई में अधिक खर्च पड़ता है, क्योंकि कागजके मामूली किनारेसे बाहरतक ब्लाक छपता है। यदि कागजके किनारेके बाहर ब्लाकका दबाव छापनेवाले बेलनपर बराबर पड़ता रहे तो शीघ्र ही दुर्घटना घटित होनेकी सम्भा-

एक चतुर मिस्त्रीके रूपमें अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं किया, इसीसे कलाकारको इसमें प्रवेश करनेका अवसर मिला। विज्ञापन-समितियोंने छपाईके काममें कई तरहसे सहायता पहुँचायी है और भारतमें इस कला की उन्नति करनेमें यथेष्ट रूपसे अंशदान किया है।

भारतमें इन पत्र-पत्रिकाओंका भविष्य

उत्पादनकी दृष्टिसे भारतमें लेखों सम्बन्धी इन पत्र-पत्रिकाओंका भविष्य कैसा है। इस प्रश्नका यथोचित उत्तर देनेके लिए कई बातोंपर विचार करना आवश्यक है।

लेखों सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओंके उत्पादनका भविष्य भारतमें इस समय दुनियाके प्रायः अन्य किसी देशसे अधिक उज्ज्वल है, प्रचार संख्याकी दृष्टिसे भी और प्रत्येक अंकके सुन्दर बनाव ठनावकी दृष्टिसे भी। इसके लिए काफी विस्तृत क्षेत्र पड़ा है इतना विस्तृत कि उसपर शायद किसीका विश्वास ही न हो।

पहले हम कह चुके हैं कि मुद्रणकी कला अन्तरराष्ट्रीय है। यह ऐसा कथन है जिसकी सत्यता उस प्रत्येक स्थान या देशमें स्वीकार की जाती है जहाँ जहाँ छपाईका काम होता है। कागजका ठिकानेसे प्रयोग, यथोचित ढंगसे रोशनाई लगाना और मशीनपर छापना, बढ़िया जिल्द बन्दी करना आदि ऐसी चीज हैं जो दुनियाके एक भागमें ही नहीं, हर भागमें अच्छी समझी जाती हैं। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि एक देशकी छपाई और दूसरेकीमें कोई अन्तर नहीं होता। अमरिकाकी छपाई इंग्लैण्डकी या फ्रांस, इटली और जर्मनीकी छपाईसे भाषाभाव सम्बन्धी अन्तरकी ओर ध्यान न देते हुए भी स्पष्ट भिन्न होती है। किन्हीं भी दो देशोंमें छपाईकी समान विशेषताएँ नहीं होतीं ठीक उसी तरह जिस तरह अन्य सांस्कृतिक विषयोंमें नहीं होतीं। ताको को कोई भी व्यक्ति रवीन्द्रकी पोशाक समझ लेनेकी भूल नहीं कर सकता। एक पूर्वी है, दूसरी पश्चिमी। अपने स्थानपर प्रत्येक ही प्रशंसनीय है और पहनावा वह भी है, यह भी है। फिर भी कोई यह नहीं कह सकता

कलाओंकी पुनर्प्राप्तिमें, चाँदीके बर्तन और सुन्दर रेशमी वस्त्र तैयार करनेमें और पुनरुद्धार की गयी जनताकी रुचिमें प्राप्त है। उसे ऐसे व्यक्तियोंकी आवश्यकता है जो इस देशकी सामग्रीका अध्ययन करने और छपाई तथा बनाव-सजावमें उसका उपयोग करनेको तैयार हों। उसे ऐसे आदमी चाहिये जो छपाईकी कलाके विकासमें अपने आपको अर्पित कर दें, केवल रुपया कमानेकी गरजसे ही उसमें प्रविष्ट न हों और उसे ऐसी संस्थाएँ चाहिये जो देशके लिए अपने धनका कुछ हिस्सा छोड़ देनेको तैयार हों ताकि वह मुद्रणकलामें अपने भाव प्रदर्शित करनेकी प्रवृत्तिको विकसित कर सके।

उत्पादनमें शिल्पियोंकी आवश्यकताके साथ साथ अभिन्यास या सजावट करनेवाले ऐसे आदमी भी चाहिये जो टाइपके प्रेमी हों और उसकी अनुशासित अभिव्यक्तिके सौन्दर्यसे भी जिनका प्रेम हो। बनाव सजाव करनेवाले आदमियोंको, उन तथाकथित अनावश्यक व्यक्तियोंको नियुक्त न कर भारतके समाचारपत्रोंने शोचनीय भूल की है। विज्ञापनोंमें उन्होंने टाइप बैठानेकी कलाकी छीछालेदर कर डाली है और अक्सर ऐसे चित्र जो नाममात्रको फोटो दिखाते मिलते-जुलते होते हैं, काफी अच्छे समझकर स्वीकार कर लिये जाते हैं।

छोटे-छोटे समाचारपत्र और पत्र-पत्रिकाएँ ही जिनके पास पैसेकी कमी हो इस दृष्टिसे सबसे बड़े अपराधी हों, यह बात नहीं। अधिक प्रचारवाले बड़े पत्रोंका इसमें सबसे अधिक दोष है। अन्य पत्रोंका नेतृत्व करनेके बजाय वे सरल मार्गपर मस्तानी चालसे चलते रहे और इस प्रकार उन्होंने अपने आपको आलस्य-मस्त बना डाला। भारतमें शायद ही कोई ऐसा पत्र हो जिसपर यह दोष न लगाया जा सके कि उसने मुद्रणसौन्दर्य सम्बन्धी अपनी जिम्मेदारी ग्रहण करनेसे मुँह मोड़ लिया। टाइपोंके चुनावमें कोई विशेष ख्याल नहीं किया जाता और ऐसे ढेर वाले टाइप रखकर चमक दमक बढ़ानेका काम जिनमें सौन्दर्यके साथ उपयोगिताका मेल हो, कम मुख्य पत्र-पत्रिकाओंके लिए छोड़ दिया

की सेवाके लिए कर सकें जिसे उन सब चीजोंकी आवश्यकता होगी जो उसके पत्र तथा पत्रिकाएँ उसे दे सकें।

आनेवाले परिवर्तनोंके कारण भारतीय पत्रोंको अपने इतिहासमें सर्वोत्तम अवसर प्राप्त होगा किन्तु उन परिवर्तनोंका सामना करनेके लिए अधिक गहराईकी और अधिक व्यापक दृष्टिकोणकी आवश्यकता होगी। उस अद्वितीय स्थितिके लिए उन लोगोंको पहलेसे तैयार रहना चाहिये जो मुद्रणकलाकी उन्नतिमें हाथ बटा सकें और उन लोगोंको भी जो छपाईका काम सुचारु रूपसे कर सकें और इतने बड़े पैमानेपर कर सकें जिससे समस्त देशकी ही आवश्यकता न पूरी हो जाय वरन उन हजारों भारतीयोंका भी काम चल जाय जो देशकी सीमाके बाहर अन्य अन्य स्थानोंमें निवास करते हैं।

करना शुरू कर दिया है, जैसा कि ई० एम० फोर्स्टर, जेम्स स्टीफन्स, विलियम सारोयन, तथा लुई मेक्नीस लिख चुके हैं।

टेलीविजन-विस्तारके बीचसे अनुयायियोंकी तुलनामें आकाशवाणी सुनने-वालोंकी संख्या कहीं ज्यादा है, चाहे वे साक्षर हों या निरक्षर (विशेषकर इस देशमें जहाँ १४ प्रतिशत लोग ही पढ़े-लिखे हैं)। इसके सिवा गण-तंत्रके लोक-कल्याण अभियानमें विशाल अपढ़ जनसाधारण पहुँचना नितान्त आवश्यक है, अतः इन दो कारणोंसे माध्यमोंके लिए अधिक अवसर प्राप्त होनेकी सम्भावना है।

ध्वनि-प्रसारणका प्रारम्भ

भारतमें सुव्यवस्थित रूपसे ध्वनि-प्रसारणका प्रारम्भ ५ मई १९१२ को हुआ। भारत सरकारने निश्चय किया कि देशमें ध्वनि प्रसारणका कार्य सरकारी प्रबन्धमें चलाया जाय। इसके पहले इस दिशामें कई प्रयत्न खानगी तौरसे किये जा चुके थे किन्तु वे सभी निष्फल हुए। १६ मई १९२४ को मद्रासमें आकाशवाणी प्रसारित करनेके लिए सबसे पहली संस्था 'दि रेडियो क्लब' स्थापित हुई। उसी साल ३१ जुलाईसे उसने ध्वनि प्रसारणका काम शुरू कर दिया, किन्तु अक्टूबर १९२७ में उसे इससे हाथ खींच लेना पड़ा।

इसी बीच 'इण्डियन ब्राडकास्टिंग कम्पनी' नामक एक संस्था बन चुकी थी और २३ जुलाई १९२७ को उस समयके वाइसराय लार्ड इरविनने कम्पनीके बम्बई केन्द्रका उद्घाटन किया, जिसमें १.५ किलोवाटवाला मीडियम-वेवका ध्वनि-विक्षेपक यंत्र बैठाया गया था। संयोगसे यही पहला ध्वनि-विक्षेपक यंत्र था जो भारतमें स्थापित किया गया था। कम्पनीके पत्र 'दि इण्डियन रेडियो टाइम्स' का प्रकाशन भी (अंग्रेजीमें) इसी समय निकला। कम्पनीका दूसरा ध्वनि विक्षेपक-यंत्र (ट्रांसमिटर)—यह भी १.५ किलोवाट का, मीडियम वेव, था—अगले महीने कलकत्तेमें प्रतिष्ठित किया गया और 'बेतारजगत्' नामक बंगलाका आकाशवाणी सम्बन्धी पत्र सितम्बर १९२९ में प्रकाशित हुआ।

१९४७	
१९४८	५०,९८
१९१	१८,८८०
१९५२	१२,७८२
सुननेवालोंकी संख्या लगभग ४० लाख है।	९,९७,११०

८ जून १९३६ को 'दि इण्डियन स्टेट ब्राडकास्टिंग सरविस' का नाम बदलकर 'आल इण्डिया रेडियो' कर दिया गया।

जब कि १९३२ में ध्वनि-प्रसारणके केवल दो केन्द्र थे—बम्बई तथा कलकत्ता—प्रत्येकमें १.५ किलोवाटका मीडियम वेव यन्त्र लगाया गया था, वहाँ अब १९५१ में देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक २१ केन्द्र स्थापित हो चुके हैं जिनमें ४८ दूर-विक्षेपक यन्त्र, विभिन्न किलोवाटके ध्वनि-प्रसारणका काम कर रहे हैं। ध्वनि प्रसारणके क्षेत्रमें अब दुनियाके देशोंमें भारतका स्थान तीसरा है।

रेडियो सम्बन्धी पत्रकारी

समाचार देना, समाचार या समाचारोंका नाटक इत्यादिका रूप देना, समाचारोंकी समीक्षा तथा प्रचारक यन्त्र द्वारा अन्यान्य रूपसे समाचार प्रस्तुत करना—इसे ही रेडियो सम्बन्धी पत्रकारी कहते हैं।

ये सब काम किस तरह किये जाते हैं इसकी चर्चा करनेके पहले मेरे लिए यह आवश्यक हो जाता है, और मेरा यह कर्तव्य भी है कि मैं यह समझा दूँ कि 'समाचार' क्या है जिससे यह विषय स्पष्ट हो जाय और आगे चलकर इसका अधिक विवेचन किया जा सके। यह कोई सरल काम नहीं है, क्योंकि 'समाचार' क्या है, इसकी सामान्य रूपसे विश्वसनीय परिभाषा करते समय कोई भी दो आदमी एक दूसरेके निकट नहीं पहुँच सकते। (चौथा अध्याय देखिये)।

फिर भी आइये इस 'अपरिभाष्य-सी वस्तु' का तत्त्व समझनेके लिए हम कोई भी एक काल्पनिक उदाहरण ले लें। मद्रासके एक समाज-सुधारकने, अथवा यों कहिये कि समाज सुधार चाहनेवाली एक

हो अथवा जो, आशाके प्रतिकूल, किसी कारणसे न हुए हो न हो र हो और शायद न होनेवाली हो।" (पृ० १०१)

श्री व्हाइटने विभिन्न सम्भावनाओंका ख्याल रखते हुए अपनी परिभाषामें एक व्यापक तथा ठीक ठीक अथवा अनुसरण करनेवाला तरीका आजमाया है किन्तु उन्होंने "दिलचस्पीकी घटना" का अर्थ स्पष्ट नहीं किया है, जो समस्याकी मुख्य कठिनाई है।

राजेस्थिन हेरल्डने 'जर्नलिज्म ऑन दि पपर' नामक पुस्तकमें लिखा है— 'समाचार किसी घटना, स्थिति, अवस्था या मतका सही सही और समयपर दिया गया विवरण है—वह विवरण जिसमें उन विशिष्ट लोगोंकी दिलचस्पी होगी जिनके लिए वह दिया गया है।' *

चाहे जिस तरहसे आप इसकी परिभाषा कीजिये, इसके निकट पहुँचने, व्याख्या करने, के तरीकेमें कोई न कोई कसर रह ही जाती है। फिर भी यहाँ जो कुछ कहा गया है उससे उसका स्थूल रूप हमारे सामने आ ही जाता है। शेष बात तो व्यक्तिगत रूपसे समझनेकी है और किसी विशेष विषयपर व्यक्तिके निजी निर्णयकी है।

भारतमें रेडियो सम्बन्धी पत्रकारीका आरम्भ रेडियोकी व्यवस्था होनेके कई वर्ष बाद हुआ। यद्यपि देशमें पहला रेडियो क्लब सन् १९२४ में मद्रासमें स्थापित हुआ और रेडियोका पहला केन्द्र बम्बईमें जुलाई १९२७ में खोला गया, फिर भी आकाशवाणी द्वारा समाचारोंका ठिकानेसे दिया जाना १० वर्ष बाद तक शुरू नहीं हुआ। किन्तु १९१ से बम्बई तथा कलकत्तेके केन्द्रोंसे समाचारोंका वह सारांश सुनाया जाने लगा जो समाचार-समितियों द्वारा उनके पास भेज दिया जाता था और जो 'संक्षिप्त, अस्पष्ट तथा अक्सर पुराना' होता था। ये संक्षिप्त समाचार पत्रोंमें छपनेकी दृष्टिसे तैयार किये जाते थे, यानि विक्षेपक यन्त्र द्वारा प्रसारित किये जानेके लिए नहीं। न तो उनका 'सम्पादन' हो पाता था और न

* प्राइर द्वारा अवतरित पृ० १०१

प्रसारित की जाने लगीं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, लाहौर, लखनऊ
और पेशावरसे इनका पुनः प्रसारण किया जाता था। इसके सिवा बम्बई
तथा कलकत्ता से दो बार तथा अन्य केन्द्रोंसे कमसे कम एक बार स्थापा
रिक समाचार भी अँग्रेजीमें प्रसारित किये जाते थे।

जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ, तब आल-इण्डिया रेडियोका
केन्द्रीय-समाचार-संघटन घुटकनेवाले उस शिशुके सदृश था जो अभी
चलना सीखनेका प्रयत्न ही कर रहा था।

युद्धके कारण सामान्यतः सब लोगोंमें, विशेष कर भारत सरकारके
मनमें, रेडियोके उपयोग और प्रभावकारिताके सम्बन्धमें नयी धारणा
हुई। परिणामतः तीव्र गतिसे उसका विस्तार किया जाने लगा। कम
चारी बढ़ा दिये गये और अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओंमें समाचारोंकी
और भी विवरणिकाएँ प्रसारित की जाने लगीं। समाचार प्राप्त करनेके
लिए विभिन्न युद्ध-क्षेत्रोंमें युद्ध-संवाददाता भेजे गये।

एक बात और हुई। आल इण्डिया रेडियोने अब विदेशोंके लिए
भी विदेशी जनताको विशेष रूपसे लक्षित करते हुए, समाचार प्रसारित
करना आरम्भ कर दिया। समाचार सम्पादक श्रोताओं समाचारों तथा
विदेशी समाचार-प्रसारण व्यवस्थाके संचालक बना दिये गये।

इतना होते हुए भी देशका रेडियो समाचार न तो अपना कार्य
निर्धारित कर सका था और न अपने भावी जीवनके सम्बन्धमें कोई
कल्पना या रूप-रेखा ही बना सका था। वह वही करता था जिसे
करनेका आदेश तत्कालीन ब्रिटिश शासक अपने कामकी पूर्तिके लिए,
उसे दिया करते थे। वह स्कूलमें पढ़नेवाले बालकके सदृश था जो
अनुशासनकी मार डाँट डपटकी शृंखलाओंसे बँधा हुआ था और जो
यह जानता था कि कर्तव्यकी अवहेलना होने पर दण्डका भागी अवश्य
बनना पड़ेगा। वह विस्तृत क्षेत्रमें परिभ्रमण तो करता था किन्तु उसका

* इण्डियन लिसनर (१९४९) के एक लेखसे रेडियोके समाचार
संचालक श्री एम० एल० चावला द्वारा उद्धृत।

आत्मसमर्पणके मिनट मिनटके समाचार विशेष व्यवस्थाके अनुसार प्रसारित किये जाने लगे। सीमाप्रान्तकी ओरसे आनेवाले आक्रमणकारियोंसे काश्मीरकी रक्षा करनेके लिए भेजी गयी भारतीय सेनाके श्रीनगरमें उत-रनेके बाद दूसरे दिन ही एक संवाददाता अभियान सम्बन्धी समाचार प्रेषित करनेके लिए हवाई जहाज द्वारा दिल्लीसे वहाँ भेजा गया। महात्मा गान्धीकी मृत्यु सम्बन्धी सारे समाचार उस कमरेसे ही प्रेषित किये जानेकी व्यवस्था की गयी थी जहाँ मृत्युके समय वे लेटाये गये थे।

भारतीय रेडियो पड़ोसी देशोंके सम्बन्ध भी स्वतन्त्र रूपसे (बिना किसीके कुसलाये) दिलचस्पी लेने लगा। बर्मा तथा लंकाके स्वातन्त्र्य महोत्सवके समाचार घटनास्थलसे हो सीधे प्राप्त करनेकी व्यवस्था की गयी। ऐसे प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनका, जिसकी बैठक दिल्लीमें हुई या किसी पड़ोसी देशमें हुए, विशेषरूपसे ध्यान रखा गया।

यह थी आल इण्डिया रेडियोके विकासकी प्रगति।

इस प्रकार १९५२ के समाप्त होते-होते आल इण्डिया रेडियोके २१ केन्द्रोंसे जो सारे देशमें फैले हुए थे, प्रतिदिन २४ घण्टोंकी अवधिमें १४ देशी और १ विदेशी भाषाओंमें समाचारोंकी ७२ विज्ञप्तिकाएँ प्रसा-रित की जाने लगीं। स्वदेशवासियोंके लिए १९ घण्टोंके अन्दर ४० समा-चार विज्ञप्तिकाएँ इन भाषाओंमें प्रसारित की जाती हैं—असामी, बंगला, अंग्रेजी, गोरखाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड डोगरी, काश्मीरी, मलयालम्, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तामिल, तेलगू और उर्दू।

विदेशी समाचार व्यवस्थामें प्रतिदिन इन भाषाओंकी कुल १२ विज्ञ-प्तिकाएँ प्रसारित की जाती हैं—अफगानी, अरबी, बरमी भाषा, केन्टनी, अंग्रेजी, फ्रेंच, हिन्दएशियाई भाषा, कुओयू, फारसी तथा पुश्तो, और विदेशोंमें रहनेवाले भारतीयोंके लिए इन भाषाओंमें—डोगरी, गुजराती, हिन्दी, काश्मीरी तथा पोटवारी।

जिन भूभागोंकी ओर लक्ष्य करके समाचारोंकी ये विज्ञप्तियाँ या विज्ञप्तिकाएँ प्रसारित की जाती हैं, वे ये हैं—पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी-

के लिए बोलचालकी शैली, जिसमें किसी तरहकी अक्लिष्टता न आने पाये, सबसे अच्छी होगी। "इस तरह लिखिये मानो आप कुछ आदमियोंसे जोरसे कुछ कह रहे हों"—यही सामान्य सिद्धान्त होना चाहिये। लेकिन बहुत ज्यादा सादगी भी ठीक नहीं, क्योंकि पढ़नेमें ऐसी रचना कुछ ऊट-पटांग सी लगने लगती है।

रेडियोके लिए लेखादि लिखनेकी विशेष विधि या प्रकृतिके सम्बन्धमें कई पुस्तक लिखी जा चुकी हैं किन्तु केवल कठोर अनुभवसे ही यह बात जानी जा सकती है कि कौन सी लिखित रचना अधिक प्रभावोत्पादक होगी। वाक्यके अन्तमें रख गये विशेषता-सूचक शब्द (जैसे 'यह बात प्राधिकृत रूपसे ज्ञात हुई है) पाठकी प्रगतिको कुण्ठित सा कर देते हैं। निषेधात्मक समाचार कभी-कभी निश्चयात्मक कथनसे अधिक जोरदार मालूम पड़ता है और हमेशा ही उसकी उपेक्षा न की जानी चाहिये। भिन्न भिन्न तरहसे पुनरुक्ति करना रेडियोके लिए प्रस्तुत की गयी रचनामें एक अच्छा गुण समझा जायगा, किन्तु शब्द समूहोंकी पुनरुक्ति न होनी चाहिये और न अनावश्यक शब्दोंका प्रयोग ही।

संख्याओंका प्रसारित किया जाना न तो सरल है और न खतरेसे रहित। गोल गोल निकटतम अंक देना हमेशा बेहतर होता है। बोलचालके शब्द कभी-कभी तो जरूर जोरदार से मालूम होते हैं किन्तु अक्सर कानोंको खटकते हैं। समाचारोंके विवरणम उचित क्रमक जितने अच्छे लगते हैं, उतने दुभाग्यसे रंग तथा वर्णन नहीं। फिर भी यह कमी पूरी करनेके लिए वर्तमान कालमें क्रिया वाक्यकी उपयुक्त क्रियाओंका प्रयोग अधिक प्रभावात्मक हो सकता है।

ये शास्त्रीय सिद्धान्त भूलमें पड़नेसे बचनेके लिए तथा अच्छी रचना तैयार करनेके लिए विश्वसनीय संकेत स्तम्भ हैं। किन्तु उनके कारण ऐसी ध्वनि प्रसारण व्यवस्थापर काफी जोर भार परिश्रम पड़ता है जिसमें एक या दो भाषाओंका नहीं, (भारतकी तरह) २४ भाषाओंका प्रयोग,

सकते, जो दैनिक पत्रके लगभग एक कालमकी सामग्रीके बराबर होते हैं।

स्वभावतः सीमित संख्याके महत्वपूर्ण समाचार ही विवरणिकामें शामिल किये जा सकते हैं। इसलिए इनके चुनावमें ऊँचे दरजेकी मूल्यांकन-क्षमता, निर्णायक बुद्धि तथा सुरुचिकी आवश्यकता होती है। समाचारोंका तुलनात्मक महत्व समझ लेने, चुनाव कर लेने और संवाद समितियों, संवाददाताओं सरकारी सूचनाओं, अन्य देशके रेडियो आदि विविध स्रोतोंसे प्राप्त समाचारोंकी कापी फिरसे लिख लेनेके बाद सब अंशोंको एकमें जोड़ने और महत्वके अनुसार उन्हें क्रमबद्ध करनेकी प्रक्रियासे काम किया जाता है जिससे विवरणिकामें एक तरहका समन्वय तथा एकरूपता लायी जा सके।

इसके सिवा, बिल्कुल एक-दो मिनट पहले तकका समाचार भी पढ़ा जाना चाहिये और कभी-कभी तो, उदाहरणार्थ प्रधान मंत्री द्वारा अचानक दिये गये किसी वक्तव्यके कारण, सारी विवरणिकाका रूप ही बदलकर फिरसे उसे नये तरीकेसे सुव्यवस्थित करना पड़ता है।

एक बात और। राज्य द्वारा संचालित समाचार-प्रसारण संस्थाकी जिम्मेदारियाँ तृतीय कोणको नये साँचेमें ढालनेका उपक्रम करती हैं। उसकी समाचार सम्बन्धी नीतिका सब बातोंमें देशकी सरकारकी नीतिके चारों तरफ केन्द्रित होना अनिवार्य है, फिर भी सरकारी नीतिकी आलोचनाकी उपेक्षा वह नहीं कर सकती। लोकतंत्रीय शासनमें, जैसा कि भारतका शासन है, जनताकी आलोचना ही उन नीतियों या कार्य पद्धतियोंका केन्द्रबिन्दु तथा आधार है जो जनताके विचारोंको प्रतिफलित करती हैं।

हालके सार्वजनिक निर्वाचनमें, जिसने मतदाताओंकी संख्या और गणना क्षेत्रके विस्तार आदिकी दृष्टिसे अन्य सब निर्वाचनोंको मात कर दिया था, आल इण्डिया रेडियोने देशके प्रत्येक राजनीतिक दलकी नीति तथा उसके नेताओंके वक्तव्यों और भाषणोंका प्रसारण किया—इस

द्वारा । पर औसत उससे भी ज्यादा है जिसका व्यय अमेरिकन रेडियो कम्पनियाँ कर सकती हैं। रेडियोका एक ही कार्यक्रम और है जिसके सुननेवालोंकी आनुपातिक संख्या इससे अधिक अर्थात् १० प्रतिशत है और वह है फिल्मी गानोंका प्रसारित किया जाना । मुझे उन कारणों के विवेचनकी आवश्यकता नहीं है किन्तु मैं यह कह देना चाहता हूँ कि सूचना और प्रसारण विभागके मन्त्री डाक्टर केसकर उच्चतर भारतीय संगीतको प्रोत्साहन देनेके लिए यदि फिल्मी गानोंके सुनाये जानेमें कमी करनेका आदेश दिया है तो उचित ही किया है।

फिर भी ऐसे कितने ही काम हैं जो ब्रिटिश रेडियो तथा अमेरिकन रेडियो कम्पनियाँ करती हैं किन्तु जिन्हें आल इण्डिया रेडियोकी समाचार व्यवस्थामें स्थान नहीं मिला है, शायद इसीलिए कि यह सरकारी संस्था है। यहाँ रेडियो-वार्ता प्रसारित करनेवाले 'विशिष्ट व्यक्ति' नहीं हैं और श्रोताओंकी संख्या तथा दिलचस्पी बढ़ानेके लिए इनके निर्माणका कोई प्रयत्न भी नहीं किया जाता ।

प्रत्येक केन्द्रसे सप्ताहमें केवल एक बार, अखबारी क्षेत्रके किसी व्यक्ति द्वारा, समाचारोंकी मीमांसा की जाती है और वे समाचारोंके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हैं—विचार जिन्हें सरकारी नीतिके अनुकूल बना देनेके लिए यथेष्ट परिवर्तित कर दिया जाता है जिससे किसी भी व्यक्ति, संस्था या देशको परेशानीमें न पड़ना पड़े। नहीं तो संभव है कि सरकारी संस्था होनेके नाते आल इण्डिया रेडियोको किसी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्रमें फँस जाना पड़े।

श्री ज० एन० साहनी तथा मिस मारिया (अंग्रेजीके) बड़े अच्छे समाचार-विश्लेषक हैं और मैं स्वतः उनकी वार्ता सुननेके लिए बहुत उत्सुक रहता हूँ किन्तु रेडियो-वार्तामें पटु विशिष्ट व्यक्तियोंका निर्माण करना स्पष्ट ही आल इण्डिया रेडियोका लक्ष्य नहीं है। इससे श्रोताओंकी संख्या बढ़ानेमें सहायता तो मिलती है किन्तु इसमें व्यापारिकताकी गंध आने लगनेकी संभावना है। इसके सिवा अमरीका शायद ही कोई

बातोंका केवल सारांश ही सुना सकता है, जब कि समाचारपत्र उन्हें पूरे ब्यौरेके साथ छापते हैं।

स्पष्ट है कि यह विचार अब देशके समाचारपत्राधिपतियोंके मनमें भी धीरे-धीरे प्रवेश करता जा रहा है और इस विषयकी ओर उतना ध्यान भी नहीं दिया जाता, सिवाय इसके कि रेडियो द्वारा समाचार कुछ पहले प्रकाशित कर दिया जाता है। समाचारपत्रोंने तथा रेडियोने यह बात मान ली की है कि दोनों ही मित्रतापूर्वक साथ-साथ काम कर सकते हैं।

किन्तु रेडियो सम्बन्धी व्यक्तित्वके निर्माणमें दोनोंकी एक राय नहीं हो सकी। कुछ वर्ष पहले जब आल इण्डिया रेडियोने व्यक्तित्व वाला अंश भी शामिल करनेका निश्चय किया और समाचारोंकी विश्वसनीयता दिखानेके लिए अपने संवाददाताओंके नाम भी बताना शुरू किया, तब पत्रोंके कुछ बड़े अधिकारियोंने तुरन्त इसका विरोध किया और कहा कि सरकारी संस्थाके लक्ष्यसे रेडियोके संवाददाता गढ़ जा रहे हैं जब कि समाचारपत्रोंको अपने समाचारोंकी विश्वसनीयता दिखानेके लिए ऐसा करना आवश्यक नहीं प्रतीत हुआ।

समाचार प्रेषित करनेवालेका नाम जाननेमें श्रोताकी दिलचस्पीका होना, समाचारकी प्रामाणिकताके लिए श्रोताओं द्वारा संवाददाताका अभिज्ञान (पहचान), तथा अच्छेसे अच्छे समाचार भेजनेके अपने कार्य रूपसे विचलित न होनेके लिए संवाददाताको प्रोत्साहन, जिससे आल इण्डिया रेडियोको अपने संवाददाताओंसे केवल बढ़िया चीज ही प्राप्त हो सके—इन सब बातोंका महत्त्व सम्भवतः आँका नहीं गया। इसीसे सरकारको झुक जाना पड़ा। जो विचार आगे और संपुष्ट किया जा सकता था और जो विधान जनताको पसन्द भी आता, वह अपने जन्मके केवल दो ही महीनोंके भीतर समाप्त हो गया।

निजी रेडियो संस्था होती या स्वायत्त रेडियो निगम होता तो ऐसा विरोध-प्रदर्शन केवल प्रतियोगिताका सूचक ही माना जाता, इससे अधिक और कुछ नहीं।

निहित स्वार्थसे सम्बद्ध 'उदरपूर्तिवाद' के भार उसकी उपेक्षा भी की जाने लगी। स्वायत्त ध्वनि-प्रसारण-निगममें प्रतिभावान् व्यक्तियोंको, उदरपूर्तिवादियोंकी अपेक्षा, अधिक अवसर प्राप्त होना अवश्यम्भावी है।

अगले चार वर्षोंमें ७॥ करोड़ रुपये लगाकर प्रसारण-व्यवस्थाका विकास किया जानेवाला है। इससे स्पष्ट है कि अब प्रतिभासम्पन्न स्त्री पुरुषोंके लिए, जिनमें दूरतक देखनेकी क्षमता, मौलिकता, वास्तविक निर्णायक बुद्धि और सुरुचि हो अधिक अवसर मिल सकेगा।

जब प्रस्तावित उन्नीसों ध्वनिप्रसारण यन्त्र—लघुतरंगोंवाले तथा मध्यम तरंगोंवाले, दोनों—प्रतिष्ठित कर दिये जायँगे और छः नये केन्द्र खुल जायँगे जो इस समयके मध्यम तरंगोंवाले प्रसारणयन्त्रों सहित देशके १५ करोड़ वर्गमील क्षेत्रमसे लगभग एक तिहाई क्षेत्रमें अपना काम शुरू कर देंगे, तब किसी भी नवयुवकके सामने ऐसे अवसर आयेंगे जिनसे वह लाभ उठा सकता है।

प्रसारण-व्यवस्थाके विकासार्थ सन् १९५० में जो वैज्ञानिक परामर्श समिति स्थापित की गयी थी उसने सिफारिश की है कि परीक्षणके तौर पर एक दूरदर्शनकारी यन्त्र प्रतिष्ठित किया जाय। खबर है कि इसे कार्यान्वित करनेका प्रयत्न भी आरम्भ हो गया है। जब दूरदर्शन यन्त्र अन्तमें काम करना शुरू कर देगा, तब भारतके राष्ट्रीय रेडियोकी सेवाके अब सरोंके लिए आकाश ही अन्तिम सीमा होगी।

आवश्यक न था, इसलिए इन दोनोंकी ओर अर्थात् पत्रके व्यावसायिक अंगकी ओर अभी अभीतक अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था।

उपर्युक्त कारणसे ही इनमेंसे अधिकतर पत्रोंके प्रबन्धकगण भी प्रायः किसी न किसी राजनीतिक दल—कांग्रेस, उदारदल (लिबरल), मुस्लिम तथा जमींदार या व्यवसायी वर्ग—के साथ रहनेका प्रयत्न करते थे।

कई वर्ष बीत जानेपर, विशेष कर स्वातन्त्र्य प्राप्तिके बादसे और जबसे इन 'चतुर्थ सम्पत्ति' (समाचारपत्रों) की शक्तिका पता चला है, तबसे अखबारी व्यवसायके सम्बन्धमें पहलेके विचार स्पष्ट रूपसे बदल गये हैं। फिर भी यह बात किसी प्रतिवादके भयके बिना कही जा सकती है कि भारतीय पत्रोंके व्यावसायिक अंगको अभी काफी उन्नति करनी होगी तब कहीं मामूली रूपसे उसकी तुलना अमेरिका, कनाडा तथा इंग्लैण्ड जैसे उन्नत देशोंके समाचारपत्रोंके व्यावसायिक अंगसे की जा सकेगी। इतनी बातें तो हमने इस विषयकी भूमिकाके रूपमें कही।

अब हम इस अध्यायके मुख्य विषयकी ओर आते हैं। सब बात अच्छी तरह समझनेमें सुविधा हो इस लिये इसे इन तीन हिस्सोंमें बाँट देना बेहतर होगा—प्रबन्ध, प्रचार तथा विज्ञापन। 'प्रबन्ध' शब्दमें, जैसा कि मोटे तौरसे भारतमें उसका अर्थ समझा जाता है, प्रचार तथा विज्ञापनका काम भी आ जाता है, क्योंकि प्रबन्धक गण या मालिक ही प्रचार एवं विज्ञापनकी बातकी देखरेख करते हैं। फिर भी इस पारिभाषिकी सुविधाके लिए समाचारपत्रके व्यावसायिक अंगकी इन तीन मुख्य बातोंको चर्चा हम अलग अलग शीर्षकके नीचे करेंगे।

प्रबन्ध-विभाग

प्रबन्ध विभागसे हमारा आशय उस विभाग या कार्यभाग्र करते हैं जो इस उद्योगका संचालन करे। मोटे तौरसे हम भारतीय पत्रोंकी प्रबन्ध व्यवस्थाके तीन भेद कर सकते हैं—(१) एक व्यक्ति या एक दलके पत्रकी व्यवस्था (२) एक परिवार द्वारा की जानेवाली व्यवस्था तथा

उनके सम्पादक मण्डलमें भारतीय भाषाविद्-समके बड़े-बड़े लोग शामिल थे। जिस दिन उनका जन्म हुआ, करीब-करीब उसी दिनसे उन्हें भरपूर विज्ञापनका और प्रचारके योग्य ग्राहक संख्याका आश्वासन मिल चुका था। और इन सबसे बड़ी बात यह थी कि उनके साधन भी बहुत अच्छे थे—पत्रकार जगत्‌के चुने हुए कार्यकर्ता और प्रचुर धन। किन्तु इन सबके बावजूद पत्रोंके अस्तित्वकी रक्षा नहीं की जा सकी।

परिवार द्वारा संचालित पत्र, जिसका एक विशिष्ट उदाहरण मद्रास का 'दि हिन्दू' है, अपने वर्गका निराला ही होता है। उसका अपना भेद हो माना जाना चाहिये। 'हिन्दू' का यह बड़ा भारी सौभाग्य था, जैसा बहुत कम देखनेमें आता है, कि उसके जितने भी सम्पादक स्वामी हुए वे सब एक ही परिवारके थे और उन्होंने बड़े परिश्रमसे पत्रका अभि रक्षण कर उसे उसके वर्तमान आकार, रूप और स्थितिमें पहुँचाया।

प्रबन्धकोंके मुख्य कार्य ये हैं—(१) पत्रका आरम्भ करनेके लिए प्राथमिक पूँजी जुटाना—या तो खुद अपनी पूँजी देकर या फिर किसीके साथ साझेदारी कर, या संयुक्त स्कन्धप्रमण्डल बनाकर अथवा फिर किसी राजनीतिक दल द्वारा इस कामके लिए अलग कर दिये गये कोष से लेकर, (२) पत्रके लिए कार्यालयकी स्थापना करना; (३) अच्छे छापखानेमें छपाईकी व्यवस्था करना या अपना छापाखाना खोलना (४) अखबारी कागज बराबर मिलते रहनेका निश्चित प्रबन्ध करना, और (५) सम्पादन, मुद्रण प्रकाशन, प्रचार एवं विज्ञापनका काम करनेके लिए सुयोग्य कर्मचारियोंकी नियुक्ति करना।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे स्पष्ट हो जाना चाहिये कि दैनिक पत्रके उद्योगमें सफलताकी निश्चित आधारके लिए रुपया पैसा, अच्छा छापाखाना और अच्छे कर्मचारियोंकी नियुक्ति ही पर्याप्त नहीं है। सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी प्रतीत होती है कि मनुष्यों और रुपये-पैसेके इन साधनोंके कामका, एक जिम्मेदार और सुयोग्य व्यक्तिके निर्देशनमें, ठीक ढंगसे समन्वय तथा एकीकरण हो। इस

पाठ—केवल पढ़ी-लिखी जनतातक भी—नहीं पहुँच सकता। अंग्रेजी पत्रोंमें अभीतक सबसे अधिक प्रचार-संख्या 'टाइम्स ऑफ इण्डिया', 'स्टेट्स मैन', 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'अमृत बाजार पत्रिका' की रही है किन्तु यदि क्षेत्रोंके अनुसार इनकी प्रचार-संख्याका अवलोकन किया जाय तो पता चलेगा कि कुछ पत्र क्षेत्र-विशेषमें तो अधिक लोकप्रिय हैं किन्तु अन्य क्षेत्रोंमें उनका प्रचार बहुत कम है। भारतके स्वतन्त्र होनेके बादसे देशी भाषाओंके पत्र अपना उचित स्थान प्राप्त करते जा रहे हैं। अंग्रेजीका गौण स्थान दिये जानेसे तथा भाषाओंके आधारपर अधिकाधिक प्रान्तोंका निर्माण होने पर उनका महत्त्व घटनेके बजाय बराबर बढ़ता ही जायगा। राष्ट्रभाषाके पदपर हिन्दीके अधिष्ठित कर दिये जानेसे यह बात साफ दिखाई देती है कि हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओंका भविष्य बहुत उज्ज्वल है और अंग्रेजीके बाद ये पत्र ही सारे देशमें प्रचलित होनेका थोड़ा-बहुत दावा कर सकेंगे।

यहाँ यदि हम कुछ सामयिक पत्रों, विशेषकर कुछ विशिष्ट विषयोंके पत्रोंके, जो प्रायः अंग्रेजीमें निकलते हैं, प्रचारके सम्बन्धमें भी दो शब्द कह दें, तो यह असंगत न होगा। उदाहरणके लिए अंग्रेजीमें प्रकाशित होनेवाले किसी आर्थिक या वित्तीय विषयोंके पत्रको ले लीजिये। उसकी ग्राहक संख्या ४-५ हजारसे अधिक नहीं हो सकती; क्योंकि अंग्रेजी जाननेवाले ही, और उनमें भी केवल वही जिन्हें वित्त सम्बन्धी विषयोंमें दिलचस्पी हो, उसे पढ़ सकते हैं। इनमें भी केवल वे ही इसे मँगा सकते हैं जो इस तरहके पत्रोंके अपेक्षाकृत अधिक मूल्य दे सकनेकी क्षमता रखते हों।

भारतमें पत्रोंकी प्रचार-संख्या अधिक न होनेका एक और कारण सारे देशमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक फैले हुए पुस्तकालयों तथा वाचनालयोंका जाल है। बहुतसे लोग जो इन पुस्तकालयोंमें आते हैं, विशेष रूपसे सबेरेके या शामके समाचारपत्र पढ़ने आते हैं और इससे पत्रोंके प्रचारपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी तरह एक ही अखबारसे दो,

रूपमें समर्पित प्रतियाँ (स) भी कम कर दीजिये। तात्पर्य यह हुआ कि विशुद्ध या वास्तविक प्रचार-संख्या सूत्र रूपमें इस प्रकार रखी जा सकती है—"छ—विना वि प्र स"।

यद्यपि विशुद्ध ग्राहकसंख्याको ही विज्ञापनदाता अपना आधार मानते हैं, फिर भी अक्सर 'समस्त पाठकसंख्या' को भी यथेष्ट या समान महत्त्व दिया जाता है। उदाहरणके लिए प्रथम श्रेणीके व्याव सायिक या व्यापारिक पत्रोंमें, जिनका मूल्य अधिक होता है, विज्ञापन-दाता प्रायः यह हिसाब लगानेका प्रयत्न करता है कि प्रत्येक अंकके पाठकोंकी सम्भावित संख्या क्या हो सकती है। कितने ही ऐसे पत्र हैं जिनके अंककी एक एक प्रति १०-१० या १२-१२ व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है। जितनी प्रतियाँ कुल बिकी हों उतनेमें प्रत्येक प्रतिके पाठकोंकी संख्याका गुणा करनेसे 'समस्त पाठकसंख्या' प्राप्त की जा सकती है। यहाँ एक बात और कह देनी चाहिये। केवल यही देखना आवश्यक नहीं है कि किस पत्रके कितने पाठक हैं बल्कि पाठक किस कोटिके हैं, कितने प्रभावशाली व्यक्ति हैं, यह भी विचारणीय है; विशेषकर व्याव सायिक, वित्तसम्बन्धी तथा अन्य विशेष विषयोंके पत्रोंके लिए।

सन् १९४९ तक किसी समाचारपत्रकी ठीक ठीक प्रचारसंख्या जाननेका कोई उपाय न था किन्तु उस वर्ष ए. बी सी —अर्थात् आडिट ब्यूरो ऑफ सरकुलेशन्स—के स्थापित हो जाने तथा समाचारपत्रों सम्बन्धी अब्द पुस्तक (ईयर बुक्स) एवं निर्देशिकाओं (डाइरेक्टरीज) के प्रकाशित होने लगनेसे अब विशुद्ध ग्राहकसंख्याके विश्वसनीय आँकड़े प्राप्त करना मुश्किल नहीं है। यदि लोगोंको इन आँकड़ोंपर विश्वास करना अभीष्ट हो तो इस कार्यके लिए इस तरहकी कोई स्वतन्त्र संस्थाका होना आव श्यक है जैसी कि अमेरिका तथा ब्रिटेनमें है, वहाँ एक समय (विज्ञापन प्राप्त करनेके लिए) बड़ी बड़ी प्रचारसंख्याका बढ़ा दावा करनेकी चाल सी पड़ गयी थी। कहते हैं कि अमेरिकामें इन आँकड़ोंको प्रकाशित करनेकी पहली बार कोशिश की गयी, तब कितने ही प्रकाशकोंपर गजब

आस-पासके स्थानोंमें पत्रका वितरण करानेका जिम्मा ले लेती हैं। (इनमें एक दो कम्पनियाँ तो शहरपर शहरके बाहरकी अमर्यादित अपनी वितरण-व्यवस्था फैलाये रखती हैं।) प्रचार व्यवस्थापकमें इतनी योग्यता होनी चाहिये कि वह इस बातका निर्णय कर सके कि उससे अच्छी एजसी कौन है और उसीका चुनाव वह करे।

इसके सिवा अखबार बेचनेवाले लड़के भी होते हैं जो शहरके जन संकुल मार्गोंमें घूम-घूमकर, विशेषकर दफ्तरके कामके समय, या अन्य महत्वके अड्डोंपर जा जाकर अखबार बेचा करते हैं। प्रचार-व्यवस्थापक का यह काम है कि वह इनमें जो सबसे तेज हों, ऐसे लड़कोंपर नजर रखे और उन्हें चुनकर अपना काम निकाले। फिर कुछ लड़कोंको वेतनपर नियुक्त करना या पत्र पहुँचानेवाली गाड़ियाँ किरायेपर तय करना भी आवश्यक हो सकता है, जिससे दूर-दूरके ऐसे स्थानोंमें रहने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तियोंको भी अखबार मिल सकें जहाँ ट्रेनसे, ट्रामसे या बससे पत्र भेजनेकी व्यवस्था आसानीसे न हो सकती हो। इस सारी व्यवस्थाको हम उसका स्थानीय वितरण संगठन कह सकते हैं।

जितनी प्रतियाँ बाहर भेजनी होती हैं उनके सम्बन्धमें किसी भी अच्छे प्रतिष्ठित पत्रके प्रचार-व्यवस्थापकके पास प्रत्येक नगर तथा ग्रामके ग्राहकोंकी सुसंगठित तथा सम्यक् रूपसे अनुक्रमित अद्यावधिक सूची तैयार रहनी चाहिये और उसे प्रयत्न करना चाहिये कि प्रेषितव्य स्थानोंके लिए जहाँ जितनी प्रतियोंकी आवश्यकता हो, उतनी प्रतियाँ यथासाध्य क्षिप्रातिक्षिप्र जो साधन उपलब्ध हों,—बस रेल स्टीमर या विमान—उनसे तुरन्त भेज दी जायें।

जहाँ जहाँ हवाई जहाजसे प्रतियाँ भेजनेकी माँग प्राप्त हो वहाँ वहाँ उन्हें प्रेषित करनेकी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिसमें कोई गलती न होने पावे और इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रतियाँ हवाई जहाजके पहुँचते ही ले ली जायें और अविलम्ब उनका यथानुरूप वितरण कर दिया जाय। उन पत्रोंके सम्बन्धमें जिनके संस्करण अन्य बड़े

पैकेट या समूह सा बना लेना चाहिये जिससे व्यवस्था-विभाग काम उठा सके।

प्रचार-व्यवस्थापकका एक काम अपने मामूली पाठकों तथा भावी पाठकोंके हाथ पत्र बेचकर उसकी यह कोशिश रहना है कि समाचारोंकी दृष्टिसे तथा सम्पादकीय विचारोंकी दृष्टिसे उसीका पत्र सबसे बढ़िया है। पत्रके कालमोंमें स्थान सुरक्षित करानेवाले (विज्ञापनदाता) जानते हैं कि प्रति सैकड़ा कितने व्यक्ति दुबारा, तिबारा अपना चन्दा भेजते चलते हैं, उसीसे पता चलता है कि पत्रका प्रचार पूर्णत: सन्तोषजनक है या नहीं। पुराने ग्राहकोंमेंसे प्रतिवर्ष अधिकसे अधिक व्यक्ति अपना चन्दा फिरसे भेज दें, यह देखते रहना प्रचार व्यवस्थापकका ही काम है।

नये पाठक और ग्राहक प्राप्त करनेके लिए प्रचार व्यवस्थापकको यह बात बराबर दिखाते रहना चाहिये कि पत्रमें हमेशा उपयोगी सामग्री मिलती रहेगी। इसके लिए प्रमाण देनेकी आवश्यकता है। केवल मुँहसे कह देनेसे काम न चलेगा। केवल इसीके बलपर विज्ञापन तथा नये ग्राहक प्राप्त किये जा सकते हैं। इसलिए प्रचार व्यवस्थापकको अपने पत्रकी सभी महत्त्वपूर्ण बातें अच्छी तरह समझ लेनी चाहियें जिससे वह बता-कर, समझाकर वह पत्रकी बिक्री बढ़ा सके।

बिक्री बढ़ानेका प्रयत्न करनेवाले प्रचार-व्यवस्थापकको हमेशा नये चित्र, रेखाचित्र (ग्राफ) और प्रचार-संख्या प्रस्तुत करनेके नये-नये नाटकीय ढंग सोचते रहना चाहिये ताकि जो लोग देखना चाहें कि पत्र विशेषका प्रचार किस ओर या किस वर्गमें बढ़ रहा है वे देख सकें और अपनी तसल्ली कर सकें।

विज्ञापन

यदि प्रचार ही समाचारपत्रकी नींव और उसकी जान है तो विज्ञापन समाचारपत्र रूपी मकानकी मेहराबमें लगनेवाला बीचका पत्थर है। 'इफेक्टिव एडवरटाइजिंग' नामक पुस्तकके लेखक तथा विज्ञापन-कलाके मान्य विशेषज्ञ जान ई० कनर्सके कथनानुसार "विज्ञापन और कुछ नहीं,

टाइम्स ऑफ इण्डिया' के वर्तमान सम्पादक फ्रैंक मोरेसने ठीक ही कहा था कि "विज्ञापनदाता न रहें तो समाचारपत्र चल नहीं सकते।" जिस तरह अपनी अधिकांश आमदनीके लिए समाचारपत्र विज्ञापनदाताओंपर अवलम्बित रहते हैं, उसी तरह विज्ञापनदाता भी उन वस्तुओं या उन सेवाओंका विज्ञापन करनेके लिए जिन्हें वे लोगोंके हाथ बेचना चाहते हों विज्ञापनका सर्व प्रमुख एवं सर्वोत्तम साधन समझकर किसी अच्छे प्रचारवाले पत्रका सहारा लेनेको विवश होते हैं। विज्ञापनदाताओंको यह बात हमेशा स्मरण रखनी चाहिये कि विज्ञापन करनेके कितने ही नये-नये साधनोंके निकल आने पर भी समाचारपत्रका स्थान अब भी सबसे आगे है। सन् १९५१ में अमेरिकामें विज्ञापनका सर्वप्रथम साधन समाचारपत्र ही थे, जैसा कि विज्ञापनके विभिन्न साधनोंपर किये गये खर्चके निम्नलिखित आँकड़ोंसे स्पष्ट है—

समाचारपत्र	१,११,८६,५२,६२०	रुपये
सामान्य पत्रिकाएँ	८८६४,५८,२०१	,,
रेडियो	६२७१,७६ ३७९	,,
टेलीविजन	४१,०४,६८, २१	,,

जान पड़ता है कि ब्रिटेनमें भी विज्ञापनका सर्वोत्तम साधन समाचार पत्र ही समझे जाते हैं, क्योंकि सन् १९५२ के प्रथमार्द्धमें विज्ञापनके समस्त साधनोंपर जितना खर्च हुआ, उसमेंसे १० करोड़ १८ लाख ७१ हजार रुपये केवल समाचारपत्रोंमें दिये गये विज्ञापनोंपर खर्च हुआ। कहा गया है कि १९५१ की उसी अवधिकी तुलनामें यह व्यय १७ प्रति शत अधिक हुआ। दुर्भाग्यवश अपने देशके ऐसे तुलनात्मक आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं फिर भी यह जानकर सन्तोष होता है कि बम्बईमें 'इण्डियन सोसायटी ऑफ एडवरटाइजर्स' नामक जो संस्था हालमें ही स्थापित हुई है उसने ऐसे आँकड़ोंका संग्रह करना अपना पहला काम घोषित किया है।

विज्ञापनदाता अब सभी जगह अधिकाधिक मात्रामें अपना महत्त्व

संस्था द्वारा विज्ञापन छपवाना ही अन्ततोगत्वा अधिक लाभदायक होता है। कुछ मामलोंमें तो अपने विज्ञापनोंकी देखरेख स्वयं करनेकी प्रवृत्ति व्यावसायिक संस्थाओंमें इस कारण उदय हुई कि वे विज्ञापनक संस्थाओंका दिया जानेवाला कमीशन (बर्तन) अपने लिए ही बचा लेना चाहती थीं, किन्तु जबतक विज्ञापन छपवानेका काम इतना बड़ा-बड़ा न हो कि उसके लिए पूर्ण रूपसे सज्जित एक पृथक विभाग रखना आवश्यक हो, तबतक यह प्रयोग करनेसे कोई लाभ नहीं।

विज्ञापनक एजेन्ट या विज्ञापनक संस्थाएँ विज्ञापन भेजवानेके बदले समाचारपत्रोंसे कमीशन लिया करती हैं। ये एजेन्ट या ये संस्थाएँ विज्ञापन इकट्ठा ही नहीं करतीं, वरन् अन्य कामोंके साथ यह भी करती हैं कि विज्ञापनको ठीकसे सजा देना जहाँ जरूरत हो वहाँ ब्लॉक बनवा देना, ठीक ढंगके अखबारोंका चुनाव करना और उन्हें इस बातकी हिदायत करना कि कौनसा विज्ञापन किस स्थानपर रखा जाय, विज्ञापनदाताओंसे प्राप्यकों (बिलों) का रुपया वसूल कर घोम ही—और यह काम बड़ी जोखिमका तथा जिम्मेवारीका होता है—उन उन समाचारपत्रोंको चुका देना जिनमें विज्ञापन छपवाया गया हो।

विज्ञापन-सम्पादक दो तरहके होते हैं—मान्य तथा अमान्य। मान्य सम्पादक (एजेन्ट) वे हैं जिन्हें समाचारपत्रोंकी संस्थाओंने—जैसे इण्डियन एण्ड ईस्टर्न न्यूज पेपर सोसायटी—मान्यता दी हो। इन्हें अन्योंकी अपेक्षा अधिक अच्छी शर्तें या रियायतें मिलती हैं—कमीशन उनसे अधिक पाते हैं प्रतिशत तथा पत्रोंके व्यवस्था विभागको रुपयेकी अदायगीके लिए अधिक समय (९० दिन) मिलता है*।

प्रत्येक समाचारपत्रमें विज्ञापनोंकी देखरेखके लिए पृथक् विभाग होना चाहिये। इस विभागका अधिपति होगा विज्ञापन-व्यवस्थापक। समाचारपत्र या मासिकपत्रके कार्यक्षेत्र और रूप-रंग आदिसे इसके कर्तव्योंका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

* अब यह अवधि ७५ दिन कर दी गयी है।

चाहिये और उसके लिखने बुझने, बातचीत करने आदिका ढंग आनन्द दायक तथा पुस्तका प्रेमेधावा होना चाहिये। थोड़ेमें उसे अपने पत्रकी वकालत इस तरह करनी चाहिये जिससे किसीकी भी सलस्मी हो जाय और जो भावी ग्राहक विरोधी रुख धारण किये हो या हिचकिचा रहा हो वह भी समुचित आश्वासन तथा प्रोत्साहन पाकर अपना विचार बदल दे।

विज्ञापन छपवानेकी प्रवृत्ति बराबर बढ़ रही है। भारतमें उसका भविष्य उतना ही महान् है जितना पत्र-पत्रिकाओं आदिका। जिस तरह हमें पत्रकारोंको प्रशिक्षण देनेकी आवश्यकता है, उसी तरह हमें अपने युवकोंका विज्ञापन सम्बन्धी नौकरियों या कामोंके लिए भी प्रशिक्षित करना चाहिये। यह ऐसी चीज है जिसकी ओर केवल समाचारपत्रों, विज्ञापनदाताओं तथा विज्ञापन संस्थाओंको ही नहीं वरन् शिक्षा विशारदों, माता-पिताओं तथा देशके युवकोंको भी ध्यान देना चाहिये।

इस छोटेसे अध्यायमें कानूनकी इन शाखाओंका ब्यौरेवार वर्णन करना सम्भव नहीं। फिर भी प्रारम्भिक सिद्धान्तोंकी चर्चा यहाँ की जा सकती है।

अपमान-लेख तथा मानहानि

मानहानिका अपराध हमेशा ही समाचारपत्रों द्वारा किया जानेवाला मुख्य अपराध माना गया है। यह अपराध अधिकारके अन्य सब तरहके उल्लंघनसे गुरुतर है जिसके लिए कोई समाचारपत्र दोषी ठहराया जाय। पत्रकारोंको आयेदिन व्यक्तियोंकी प्रतिष्ठा और कीर्तिकी चर्चा करनी पड़ती है—चाहे वे तथ्यकी बात लिख रहे हों, अभिकथन और आरोप कर रहे हों, सम्पादकीय टीका टिप्पणी कर रहे हों, खास समाचार दे रहे हों, शीर्षक बना रहे हों या ऐसा ही अन्य काम कर रहे हों।

'मानहानि' अधिक व्यापक शब्द है जिसका प्रयोग उन अपमान जनक वक्तव्यों या कथनोंके लिए होता है जो मौखिक रूपसे अथवा लेखके रूपमें दिये या किये गये हों। किसीकी मानहानि करनेवाली जो बातें समाचारपत्रमें प्रकाशित की जाती हैं उन्हें ही हम 'अपमान लेख' (लाइबल) कहते हैं। अपमान-कथन (स्लेण्डर) मौखिक रूपसे की गयी मानहानिकी ओर संकेत करता है।

'अपमान लेख' समाचारपत्रोंके लिए भयका मुख्य कारण होता है। किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें ऐसे झूठे और अपमान जनक वक्तव्यका प्रकाशित किया जाना 'अपमान-लेख' कहा जाता है, जो लिखा गया हो, छपा हो या संकेतों-चित्रों द्वारा या किसी ऐसे रूपमें प्रकट किया गया हो जो स्थायी हो तथा जिसे प्रकाशित करनेके लिए कोई विधिक औचित्य या कारण न हो। उसके सम्बन्धमें यह समझा जाता है कि जिनके लिए यह प्रकाशित किया जाता है उनमें व्यक्ति विशेषके विरुद्ध अध्यारोप फैलानेका प्रयत्न किया गया है या उससे उसके व्यापार, पेशे या रोजगारको हानि पहुँची है, या उसे घृणा, अपमान तथा उपहासका पात्र बनाया गया है अथवा इस तरह विचारशील और अच्छे भाव

(५) वह वादीके सम्बन्धमें ही दिया या किया गया हो।

अपमानजनक वक्तव्य या कथन इन चार हिस्सोंमें बाँटे जा सकते हैं—

(१) घृणा, अवज्ञा या तिरस्कारका भाव उत्पन्न करनेवाले अथवा उपहास करानेवाले;

(२) वे जिनके कारण समाजके लोग वादीसे दूर-दूर रहने या उसकी संगतिमें आनेसे बचनेका प्रयत्न करें

(३) पेशा वृत्ति या पदपर प्रभाव डालनेवाले

(४) व्यापार या कारोबारपर प्रभाव डालनेवाले।

जिन वक्तव्योंके कारण किसी व्यक्तिकी वैयक्तिक ख्यातिको क्षति पहुँचे, उनसे उसकी हँसी होती है या लोग उससे घृणा करने लगते हैं, उसकी अवज्ञा करते हैं। यदि किसीपर दुराचार या दुश्चरित्रताका आरोप लगाया जाय और वह आरोप झूठा हो तो वह व्यक्ति लोगोंकी घृणा, अवज्ञा तथा तिरस्कारका पात्र बन जाता है।

किसी व्यक्तिके बारेमें झूठमूठ यह प्रकाशित कर देना कि उसने अपनी माताकी हत्या कर डाली है, किसी बैंकका रुपया उड़ा दिया है, या वह कि वह शराबी है, अपनी पत्नीको बहुत पीटता है, या यह कि वह *गलित कुष्ठसे अथवा किसी अन्य सक्रामक रोगसे पीड़ित है*, अथवा यह कि कोई औरत असती है, कोई वकील कानून नहीं जानता, कोई वैद्य अकुशल चिकित्सक है,—यह सब अपमानकारी है।

किसी व्यक्तिकी तुलना ऐसे किसी पशुसे करना जिसकी आदत या *विशेषता स्वभावतः घृणा उत्पन्न करनेवाली, उबिया देनेवाली या गुस्सा* दिलानेवाली हो—उदाहरणके लिए उसे 'काली भेड़', 'घासमें छिपा साँप', 'सियार' या 'सूअर' कह देना—अपमानकारक है। इसी तरह किसी मासिक पत्रिकामें घटिया मालकी कोई कहानी किसी सुविख्यात लेखकके नामसे प्रकाशित कर देना, यद्यपि वह उसकी लिखी हुई न हो, अपमानकारक समझा जाता है। समाचारपत्रमें कोई ऐसा वृत्तान्त प्रका

व्यंग्योक्ति

कुछ शब्द अपने दूसरे अर्थमें अपकीर्तिकर हो सकते हैं—अर्थात् अपने सामान्य अर्थमें यद्यपि वे अपकीर्तिकर नहीं होते किन्तु कभी-कभी विशेष अपमान-जनक अर्थोंमें उनका प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा कोई प्रकाशित लेख या वक्तव्य देखनेमें बिल्कुल निर्दोष और अपकीर्तिकर अर्थसे रहित प्रतीत हो सकता है, फिर भी परिस्थिति-विशेषमें उससे किसी व्यक्तिकी कीर्तिको हानि पहुँच सकती है।

अन्य अपमान-लेख

व्यक्तियोंके जन्म, मरण, मँगनी, विवाह आदि सम्बन्धी गलत सूचनाएँ अपमान-जनक हो सकती हैं, उदाहरणके लिए किसी उच्च कुलकी सम्भ्रान्त महिलाके किसी क्षुद्र जाति या क्षुद्र ख्यातिके व्यक्तिके साथ विवाहकी सूचना। यदि किसीके नामके पहलेके अक्षर गलत छिप गये या नामकी अशुद्ध वर्तनी छाप दी जाय, तो इससे किसी अन्य व्यक्तिका पतन होकर उसका अपमान हो सकता है।

इसलिए यह बहुत ही जरूरी है कि समाचारोंका संग्रह करते समय और उनके सम्पादनमें उच्च प्रकारकी सावधानी रखी जाय जिससे किसीका नाम, विवरण आदि गलत न जाने पाये। विवरण या कथानकके अन्तर्वस्तुमें अपकीर्तिकर बातका होना जितना बुरा है, उतना ही शीर्षक पंक्तियोंमें उसका रहना बुरा है। अपमानजनक शीर्षक पंक्तियाँ देनेसे सम्पादकीय विशेषाधिकार समाप्त हो जानेकी आशंका रहती है। समाचारपत्रोंमें शीर्षक-पंक्तियोंके सम्बन्धमें थोड़ी सी खबर उठानेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है जिसके कारण किसी भी दिन संकट उपस्थित हो सकता है। किसीके चित्रके नीचे गलत पंक्तियाँ देना भी अपमानजनक हो सकता है। किसी भी अपमानजनक विवरणके साथ 'कहा जाता है कि' या 'खबर मिली है कि', 'सुना गया है कि' आदि शब्द रख देनेसे ही बचाव नहीं हो जाता। उससे केवल हरजानेमें कमी हो सकती है। अपमान लेख यदि लोकवार्ताके प्रश्न रूपमें रखा जाय तो इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियोंपर जिनकी निश्चित रूपसे पहचान की जा सके, कोई अभ्यारोप किया गया हो। यदि नामका उल्लेख न भी किया गया हो तब भी यह साबित करना होगा कि अभ्यारोप किसी खास आदमी या आदमियोंको लक्ष्यकर किया गया है जिनकी शिनाख्त की जा सकती है। अपमान-लेखके सम्बन्धमें इरादा या वह उद्देश्य जिससे वह लिखे गये हों, सामान्यतः महत्वहीन समझा जाता है।

यदि प्रकाशकके कुछ लिख देनेसे सचमुच वादीकी कीर्तिपर आघात हुआ है, तो वह दोषी है, भले ही उसका इरादा ऐसा करनेका न रहा हो, और जब उसने वे शब्द लिखे थे तब उसके मनमें ऐसी कोई बात न रही हो। प्रकाशन मिथ्या तथा अपकीर्तिकर हो सकता है, यद्यपि वह संयोगसे या कथनकी सचाईमें विश्वासके कारण अनजाने हो गया हो। हाँ, यह बात अवश्य है कि इस स्थितिमें हरजाना बदा दिये जानेमें इससे बड़ी सहायता मिलती है। जो समाचारपत्र अपमानजनक बात प्रकाशित करता है, खुद जोखिम उठाकर ही ऐसा करता है।

बचावकी दलीलें

अपमान-लेखके किसी मामलेमें बचावकी ये मुख्य दलीलें उपस्थित की जा सकती हैं—

(१) कथनकी सत्यताका प्रमाण।

(२) विशेषाधिकार (परम या अबाधित तथा मर्यादित)

(३) उचित टीका या आलोचना।

विशेषाधिकार—समाचारपत्रोंको कोई अबाधित या परम विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। यह केवल इन लोगोंपर लागू होता है—विधान मण्डलोंके सदस्य, वकील, गवाह या वादी प्रतिवादी, या राज्योंके कार्य या उनकी संसूचनाएं (कम्यूनिकेशन्स)। प्राविधिक दृष्टिसे इनके कथन आदिके प्रकाशनका अबाधित अधिकार समाचारपत्रोंको नहीं है।

"इनकी कारवाइयोंकी जो रिपोर्ट पत्रकार देते हैं, उनमें वह उन्मुक्ति

जाय उसे भी उसे सुन लेने या जान लेनेमें कोई स्वार्थ सिद्धि या कर्तव्य की बात न हो। इस पारस्परिकताका होना आवश्यक है।

जहाँतक समाचारपत्रोंका सम्बन्ध है, इस मर्यादित विशेषाधिकारके प्रयोगका सबसे महत्त्वपूर्ण अवसर वह है जब उन्हें संसद या विधान मण्डलोंकी अथवा न्यायालयोंकी कारवाई छापनी पड़ती है। जनताको यह जाननेका अधिकार है कि न्यायालयोंमें या विधान मण्डलोंमें क्या हो रहा है।

विधिक नियम यह है कि जब उचित ढंगसे गठित न्यायिक अधिकरण (जुडिशनल ट्रिब्यूनल) के सामने, जो खुली अदालतमें अपने क्षेत्राधिकारका प्रयोग करे, किसी मामलेपर न्यायिक कारवाई हो तो उक्त अदालतके सामने जो कुछ कहा-सुना जाय, उसकी निष्पक्ष और सही रिपोर्ट, बिना किसी द्वेषभावके प्रकाशित करना विशेषाधिकारके अन्तर्गत आता है (उक्त रिपोर्ट प्रकाशित करनेका विशेषाधिकार समाचार पत्रोंको प्राप्त है) जब पहले पहल किसी शिकायतके मजमून या वादपत्र की रिपोर्ट फाइल की जाती है, तब उसे प्रकाशित करनेका विशेषाधिकार पत्रोंको नहीं होता। बहुतसे अखबार अक्सर यह महत्त्वपूर्ण नियम भूल जाते हैं और कभी-कभी उन्हें इसकी कीमत भी चुकानी पड़ती है।

द्वेषभाव—बन्द कमरेमें उचित ढंगसे की गयी अदालतकी कारवाईका विवरण प्रकाशित करना, चाहे वह कितना ही निष्पक्ष एवं सत्य क्यों न हो, विशेषाधिकारकी परिधिमें नहीं आता (अतः समाचार पत्र भी उसे नहीं छाप सकते)। जिन कारवाइयोंकी रिपोर्ट प्रकाशित करने का विशेषाधिकार किसी प्रकाशकको प्राप्त हो, उनके सम्बन्धमें यदि यह पता चल जाय कि उसने अनुचित उद्देश्यसे प्रेरित होकर ऐसा किया है, तो उसका यह विशेषाधिकार या विशेष सुविधा समाप्त हो जाती है। मर्यादित विशेषाधिकार द्वेषका प्रमाण मिलते ही समाप्त हो जाता है। जो वक्तव्यादि मर्यादित विशेषाधिकारके अन्तर्गत प्रकाशित किये जाते हैं, जनताके हित तथा समाजके कल्याणकी दृष्टिसे कानून उनकी रक्षा करता

सनसनीखेज या अतिरंजित हों तो विशेषाधिकार समाप्त हो जा सकता है।

उदाहरणके लिए ऐसी शीर्षक-पंक्तियाँ न देनी चाहिये—'हत्यारा पकड़ा गया।' शीर्षककी पंक्तियोंमें ऐसे शब्दोंका प्रयोग करना—'विश्वासघातक', 'झूठा', 'बेईमान' या 'लम्पट' आदि—विवरण देनेके अन्तर्गत नहीं आता, वह तो टीका टिप्पणी करना हुआ। विवरणसे यह ध्वनि न निकलनी चाहिये कि पकड़ा गया आदमी (अवश्यमेव) अपराधी है। मुकदमेकी सुनवाईके वृत्तान्तमें भी कोई टीका न होनी चाहिये। फैसला हो जानेके बाद ही टीका-टिप्पणी की जा सकती है।

एक गवाहका प्रति-परीक्षण करते हुए किसी वकीलने पूछा—"जिस कम्पनीके प्रतिनिधि आप है, क्या वह शहरमें सबसे बड़ी नहीं है?" गवाहने जवाब दिया—जी हाँ। इसपर विरोधी पक्षका वकील बोल उठा, 'और वह शहरमें सबसे अधिक बेईमान भी है।" यह अभ्युक्ति कम्पनीके लिए अपकीर्तिकर समझी गयी, अदालतकी कारवाईके विषयसे इसका कोई सम्बन्ध न था और यह वकीलके कथनसे बाहरकी चीज थी। इस तरहके कथनों या अभ्युक्तियोंको प्रकाशित करनेकी छूट कानून नहीं देता। (रहीमबख्श बनाम बचालाल, ५१ अलाहा ५०९)।

पत्रकारको अपनी ओरसे कोई बात जोड़कर, जिससे टीका झलकती हो, रिपोर्टको मनोरञ्जक बनानेके प्रलोभनसे बचना चाहिये। पत्रोंके संवाददाताओंको अक्सर पहली सूचना सम्बन्धी रिपोर्टें आरोपपत्र, शपथपत्र, वादपत्र आदि देखनेकी अनुमति दे दी जाती है। उनका प्रयोग केवल नाम, पता या ऐसी ही अन्य बातें ठीक करनेके लिए किया जाना चाहिये। छापे गये विवरणोंमें इनका निर्देश नहीं देना चाहिये, जबतक कि वे अदालतमें पढ़े न जायें और नियमतः साक्ष्यके रूपमें न प्रस्तुत किये जायें।

सम्पूर्ण कारवाईका प्रकाशित किया जाना उसी स्तरपर रखा गया है जिसपर न्यायात्मकी कारवाईका प्रकाशन। छापी गयी रिपोर्ट पढ़

मुकुटका सबसे उज्ज्वल रत्न है जिससे एक तरफ तो अपकीर्ति फैलाने और दूसरी तरफ स्वतन्त्रतापूर्वक सार्वजनिक रूपसे चर्चा करनेके सुदृढ़ अधिकारके बीचका सुवर्णपथ अपनाया जा सकता है।" निष्पक्ष आलोचनाका आवश्यक तत्त्व यह है कि जिस विषयकी आलोचना की जाय वह सार्वजनिक हितका विषय हो। उसे स्पष्ट रूपसे कथित तथ्योंपर आधारित एक तरहका मानसिक मूल्यांकन सा होना चाहिये और क्षुद्र तथा भ्रष्ट उद्देश्योंके किसी तरहके अभ्यारोपसे मुक्त होना चाहिये। किसी व्यक्तिकी सचमुच जो राय हो, उसीका परिणाम टीका-टिप्पणीके रूपमें प्रकट होना चाहिये। राग द्वेषसे उसे मुक्त होना चाहिये। टीका-टिप्पणी करनेका विशेषाधिकार लोकहितकी दृष्टिसे ही प्राप्त होता है, निजी भावनाओंकी परितृप्तिके लिए नहीं। किसी व्यक्तिकी आलोचना न कर उसके कार्य या व्यवहारकी आलोचना करनी चाहिये। आप अपने विषयकी धज्जियाँ उड़ा दे सकते हैं, भले ही उससे किसीकी कीर्तिपर आघात होता हो, फिर भी ऐसी आलोचनाके लिए जो सीमा बाँध दी गयी है, उसके भीतर ही आपको रहना चाहिये।

"कोई छिद्रान्वेषण या गाली-गलौजको ढँकनेके लिए ही आलोचनाका प्रयोग न होना चाहिये।" आलोचना केवल उन्हीं बातोंकी की जाती है जिनकी ओर सर्वसाधारणका ध्यान जाता है या जिनके सम्बन्धमें सार्वजनिक टीका-टिप्पणीकी आवश्यकता होती है। वह किसी सार्वजनिक कार्यकर्ताके निजी जीवनतक उसका पीछा नहीं करती और न उसके पारिवारिक मामलोंके ही भीतर घुसनेका प्रयत्न करती है।

अपकीर्ति

पूर्वके अनुच्छेदोंमें हमने नागरिक अपराधके रूपमें 'अपमानलेख' की चर्चा की है। अपकीर्ति फैलाना राज्यके विरुद्ध किया जानेवाला अपराध भी माना जाता है और भारतीय दण्डनीति संहिताके अनुसार उसमें सजा दी जा सकती है। संहिताकी धारा ४९९ में अपकीर्तिकी परिभाषा

व्यवस्था है। यह उल्लेखनीय है कि जुरमानेकी रकमकी कोई सीमा नहीं बतायी गयी है।

न्यायालयका अपमान

समाचारपत्रके कार्यालयमें किये जानेवाले विभिन्न प्रकारके कार्योंके सिलसिलेमें दीवानी या फौजदारीके उन मामलोंके विवरण भी जो अदालतोंमें प्रस्तुत किये जानेवाले हैं या जिनपर विचार होना अभी जारी है—प्रकाशित किये जाते हैं। कभी-कभी समाचार सम्पादक या सम्पादकीय लेखादि लिखनेवाले व्यक्ति मामलेकी सुनवाई शुरू होनेके पहले ही तथ्योंकी ब्यौरेवार चर्चा करते हैं। जिन प्रमाणोंके पेश किये जानेकी सम्भावना हो, उनकी कल्पना कभी-कभी पहलेसे कर ली जाती है और वे सनसनीखेज शीर्षकोंके साथ प्रकाशित कर दिये जाते हैं। कभी-कभी ऐसे सम्पादकीय लेख या टिप्पणियाँ लिख दी जाती हैं जो मामलेके एक पक्षका अनुचित रूपसे समर्थन करती हैं और एकाध बार न्यायाधीशों एवं न्यायालयोंकी न्यायशीलताके सम्बन्धमें सन्देह प्रकट किया जाता है और यही समाचारपत्रोंके लिए संकट उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है।

'न्यायालयका अपमान' इस पदावलीकी व्याख्या करना बहुत कठिन है। फिर भी सामान्यतः 'अदालतकी अवज्ञा' में ऐसा व्यवहार आता है जिससे विधि अर्थात् कानूनके अधिकार अथवा प्रशासनके अनादर या तिरस्कारकी प्रवृत्ति उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो अथवा जिससे वादी प्रतिवादी या उनके गवाहोंके विचारों, धारणाओंमें हस्तक्षेप हो या उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। यदि कोई ऐसा काम किया जाय या ऐसा लेखादि प्रकाशित किया जाय जिससे किसी न्यायालयका अपमान होने या उसका प्राधिकार घट जानेकी सम्भावना हो, या न्यायकी साधारण कारवाईमें या न्यायालयकी विधिक कार्यपद्धतिमें बाधा पड़े या हस्तक्षेप हो तो इसे ही 'अपमान' या 'अवज्ञा' कहेंगे। अपमान दो प्रकारका होता है—(१) न्यायालयके सामने ही किया गया अपमान, तथा (२) अप्रत्यक्ष अपमान यानी वह जो न्यायालयके बाहर किया जाय।

स्वयं न्यायाधीश बननेकी, इस प्रकार जबरन न्यायालयका कार्यभार सँभालनेकी—चेष्टा न करो। विचाराधीन मामलेके सम्बन्धमें न्यायालयके बाहरकी कोई राय प्रकट न करनी चाहिये। समाचारपत्रका ऐसा अनुच्छेद (पैरा) अपमान समझा जायगा, जिसका प्रभाव वादपर टीका करने जैसा हो और जो उसके विचाराधीन रहते हुए लिखा एवं प्रकाशित किया गया हो, तथा जिससे किसी पक्षपर प्रतिकूल प्रभाव पड़े या पड़नेकी सम्भावना हो। इस बातका ध्यान होना ही चाहिये कि मामला अभी विचाराधीन है।

इस मामलेमें प्रश्न यह नहीं रहता कि जो चीज प्रकाशित की गयी है उससे न्यायव्यवस्थामें सचमुच हस्तक्षेप होता है या नहीं, वरन् यह कि उसकी प्रवृत्ति या सम्भावना ऐसी है या नहीं। यदि आप अभिवचन (प्लीडिंग), याचिकाएँ अथवा शपथ प्रकाशित करते हैं तो आपको ध्यान रखना चाहिये कि ये चीजें दोनों पक्षोंकी छपी जायँ, अन्यथा आपका कार्य 'न्यायालयका अपमान' हो जायगा।

'अमृतबाजार पत्रिका' में व्यापारियोंकी एक संस्था द्वारा अन्य लोगोंके अतिरिक्त एक तहसीलदारके भी विरुद्ध चलाया गया एक मामला छपा था। वादीने वादपत्रमें जो बात लिखी था 'पत्रिका' में वे वास्तविक तथ्यके रूपमें छाप दी गयीं, 'वादमें कथित तथ्य' के रूपमें नहीं। इसपर उच्च न्यायालयने यह टीका की कि समाचारपत्रोंपर इस बातका ध्यान रखनेकी विशेष जिम्मेदारी रहती है कि विचाराधीन मामलोंके सम्बन्धमें, चाहे वे दीवानी हों या फौजदारीके, ऐसी कोई भी बात उनके स्तम्भोंमें न छपने पाये जिससे किसी न्यायिक अधिकारी, न्याय सभ्य, या सम्भावित गवाहके मनपर, जिनका इससे सम्बन्ध हो या हो सकता हो, प्रतिकूल प्रभाव पड़ने या पूर्वधारणा बन जानेकी आशंका हो।

जो वृत्तान्त या विवरण छपे जायँ वे पक्षपातपूर्ण न होने चाहिये और न उनमें ऐसी काट-छाँट हो कि अर्थका अनर्थ हो जाय। अपमान

किसी न्यायिक अन्वीक्षाके सम्बन्धमें कुछ लिखनेका प्रयत्न करते समय कारखाईके चार क्रमोंका ख्याल रखना चाहिये, जो ये हैं—

(क) न्यायिक अन्वीक्षा (विचार) के पूर्व,

(ख) न्यायिक अन्वीक्षाके जारी रहते समय,

(ग) निर्णय हो जानेके बाद,

(घ) जब पुनर्न्याय-प्रार्थनापर विचार करना चालू हो।

कोई मामला किसी समय किस अवस्थामें है, यह अच्छी तरह जान लेना समाचारपत्रके कर्मचारियोंकी योग्यतापर छोड़ दिया गया है और इसमें सन्देह नहीं कि इसका ठीक ठीक पता लगा लेना उन लोगोंका कर्तव्य ही है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि न्यायालयके सामने होनेवाली कारखाईका सच्चा सच्चा वृत्तान्त भी छापनेके समाचारपत्रके अधिकारके साथ यह शर्त लगी हुई है कि उसे प्रकाशित करनेसे न्याया लयमें मामलेपर निष्पक्ष विचार होनेमें कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़नेकी आशंका न हो। जिस मामलेपर अभी विचार हो रहा हो उसमें यदि कोई अर्जी दाखिल की जाय तो उसे प्रकाशित करना उस हालतमें अप मान समझा जायगा, जब वह स्पष्ट रूपसे इस इरादेसे प्रकाशित की गयी हो कि विचारपर उसका प्रतिकूल या अनुकूल प्रभाव पड़े।

जब अदालतकी कारखाई हो रही हो, तब पत्रोंके लिए फोटो लेने-वालोंको फोटो नहीं लेना चाहिये जबतक कि इसके लिए विशेष रूपसे अनुमति न दे दी गयी हो। न्यायाधीश कभी-कभी चित्र लेनेकी अनु मति दे देते हैं जैसा कि महात्मा गान्धीकी हत्याके समय किया गया था किन्तु सामान्यतः ऐसी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी जाती है, विशेषकर फौजदारी मुकदमोंमें जहाँ कि छायाचित्रोंके प्रकाशित हो जानेसे गवाहों द्वारा अभियुक्तकी पहचान होनेके कार्यपर अनुचित प्रभाव पड़ सकता है।

व्यंग्यचित्रों द्वारा अपमान—व्यंग्यचित्रों द्वारा ऐसी आलोचना या उपहास करना जिसका लक्ष्य न्यायाधीश, वादी प्रतिवादी या मामलेके विचारसे प्रत्यक्षतः सम्बद्ध अन्य व्यक्ति हों तथा जिसकी प्रवृत्ति

जानबूझकर उसे अपमानित करनेपर छः मासकी सजा देर या १०००) तक जुर्मानेकी, या एक साथ दोनोंकी सजा दी जा सकती है।

क्षमा-याचना—पूर्ण और विशिष्ट ढंगकी क्षमा-याचनासे अपमान की कसक दूर हो जाती है। क्षमायाचना न करनेपर न्यायालयोंका कठोर रुख अख्तियार करना निश्चित है। क्षमा माँगनेसे इनकार करनेपर अप राधकी गुरुता बढ़ जाती है जिसके लिए निरोधक दण्ड देना आवश्यक समझा जाता है।

एकान्तताका कानून

एकान्तताके अधिकारका प्रश्न, जहाँतक समाचारपत्रोंसे उसका सम्बन्ध है, आजकी समसामयिक जीवनकी एक नयी घटना है। उसके विधिक निर्वचनमें कोई अपमानजनक बात नहीं आती। एकान्तताका अधिकार मनुष्यके इस दावेपर आधारित है कि यदि वह चाहे तो दुनियामें उसे इस तरह रहनेका अधिकार है कि कहीं भी उसका चित्र प्रकाशित न किया जाय उसके काम-रोजगारकी कोई चर्चा न की जाय, उसके सहज परोक्षण दूसरोंके आभार्य न लिखे जायें या उसकी रचनाओंपर इस-पत्रकों, परिपत्रों, सूचीपत्रों, सामयिक पत्रों या दैनिक पत्रोंमें कोई टीका टिप्पणी न की जाय।

जनताकी ओरसे अक्सर इस बातकी शिकायत की जाती है कि पत्र कार लोग नागरिकोंकी एकान्ततापर आघात करते रहते हैं। 'ब्रिटिश समाचारपत्रोंकी रिपोर्ट' (रिपोर्ट ऑन दि ब्रिटिश प्रेस) में यह सुझाव दिया गया था कि इस सम्बन्धमें बहुत कुछ वांछनीय सुधार किया जाना चाहिये, विशेषकर पारिवारिक एकान्तता भंग करनेकी प्रवृत्तिके सम्बन्धमें।

"पत्र भीतनेपर भी रिपोर्टर लोग टेलीफोन करनेसे बाज नहीं आते और मिलनेकी अनुमतिके लिए या फोटो लेनेके लिए लोगोंको परेशान किया करते हैं; वे उनके उद्यानोंमें या मैदानोंमें घुस जाते हैं और उनसे कोई समाचार प्राप्त करनेके लिए हर तरहका दबाव डाला जाता है और

प्रकाशनोंपर लागू होती हैं। यदि कोई प्रकाशन सार्वजनिक सदाचारके लिए हानिकर हो और जिन लोगोंके हाथमें वह पड़, उनके मनको नीति भ्रष्ट एवं पतित बनानेके लिए उसका दूषित प्रभाव पड़नेकी आशंका हो, तो वह अश्लील प्रकाशन समझा जायगा, जिसे कानून दबा देगा। अश्लील विज्ञापनका प्रकाशित किया जाना दण्डनीय है। धार्मिक पुस्तकोंके अवतरण, जो अन्यथा दण्डनीय न हों, उस हालतमें दण्डनीय माने जा सकते हैं जब वे पृथक् रूपसे, मूल प्रसंगसे हटाकर, छापे जायँ। अपराधपर विचार करते समय लेखकके उद्देश्यका प्रश्न उठाना असंगत होगा। प्रकाशकके सम्बन्धमें यह बात मान ली जायगी कि प्रकाशनके बाद भी स्वाभाविक परिणाम और प्रभाव उत्पन्न होता है, उन्हें उत्पन्न करनेका सचमुच उसका इरादा रहा होगा।

फिर भी ऐसे गम्भीर, विचार पूर्ण प्रकाशन अश्लील नहीं माने गये हैं जिनका अभिप्राय विवाहित युवक युवतियोंको इस विषयमें सलाह देना है कि जीवनके यौनवासना सम्बन्धी पहलूका नियमन किस तरह किया जाय। (देखिये सम्राट् बनाम हरनामदास, १९४७, लाहौर, ३८३)। चित्रकला या शिल्पकलामें नग्नता मात्र ही अश्लीलता नहीं है। क्या अश्लील है, क्या नहीं, इसका निश्चय करना सामान्य बुद्धि तथा सामाजिक जिम्मेदारीकी समझकी बात है। इस धाराके अन्तर्गत कठोर या सादी, दोनों तरहकी कैदकी सजा जिसकी मीयाद तीन महीनेतक हो, दी जा सकती है या जुरमाना हो सकता है या दोनों सजाएँ एक साथ दी जा सकती हैं।

अन्य प्रकाशन

उम्मी—दण्डविधि संहिताकी धाराएँ ९९ क से ९९ छ तक प्रस का अपील एण्ड अमेण्डमेंट एक्ट, १९२२ [१४ (१४), सन् १९२२] के द्वारा जोड़ी गयी थीं। ये धाराएँ इण्डियन प्रस ऐक्ट [१९१ का १ (१)] का अब निरसित कर दिया गया है, की १२, १७, १८, १९, २०, २१ तथा २२, इन धाराओंपर आधारित हैं।

जाना स्वीकार किया गया हो, इसके सम्बन्धमें घोषणा न कर दी हो और घोषणापत्रपर हस्ताक्षर न कर दिये हों।

कोई भी समाचारपत्र तबतक न छापा जा सकता है और न प्रकाशित किया जा सकता है, जबतक उसका मुद्रक या प्रकाशक सम्बद्ध दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट प्रथम) के सामने इस आशयकी घोषणा नहीं कर देता—

"मैं, क, ख, ग घोषित करता हूँ कि मैं नामके समाचारपत्रका मुद्रक (या प्रकाशक, या मुद्रक तथा प्रकाशक) और मुद्रणालयका मुद्रक (या प्रकाशक या मुद्रक तथा प्रकाशक) हूँ।"

मुद्रणरेखा—समाचारपत्रोंके प्रायः अन्तिम (या अन्य) पृष्ठ पर, सबसे नीचे, छोटे टाइपमें मुद्रक तथा प्रकाशकका नाम छपा रहता है। इसे ही 'मुद्रण रेखा' कहते हैं। 'मुद्रण-रेखा' उस तथ्यकी सूचक है जो बहुत प्रारम्भकालसे ही छपी हुई सामग्री आदिके सम्बन्धमें किया जाता रहा है। यह इस आशयसे दी जाती है कि मुद्रण सम्बन्धी अपराध होने पर जो व्यक्ति इसके लिए जिम्मेदार हो उसके खिलाफ अधिकारी कारवाई कर सकें। मुद्रण-रेखा न देनेकी सजा एक हजार रुपयेतक जुरमाना या छः महीनेतक सादी कैद या दोनों है (धारा १२)।

प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधिनियम, १९५१—इस अधिनियमने १९३१ के पुराने (आकस्मिक आवश्यकताके अधिकार सम्बन्धी) प्रेस अधिनियमको निरसित कर दिया है। संसद्में जब यह विधेयकके रूपमें पुरःस्थापित किया गया तब यह कहकर चारों ओरसे इसकी तीव्र आलोचना की गयी कि यह एक प्रतिगामी प्रस्ताव है जिससे विचार प्रकट करनेकी उस स्वतन्त्रतापर आघात होगा जिसकी प्रत्याभूति (गारंटी) संविधानमें दी गयी है। सरकारने अपना यह मत प्रकट किया कि इसका लक्ष्य हिंसा या विध्वंस कार्यके प्रोत्साहनको तथा अन्य गम्भीर अपराधोंको रोकना और पत्रोंमें अश्लीलतापूर्ण सामग्री न छपने देना है।

(५) जिनसे भारतके निवासियोंके विभिन्न समूहोंमें शत्रुता अथवा घृणाका भाव बढ़नेकी सम्भावना हो या

(६) जो अशुद्ध हों, अश्लील, अपमानपूर्ण या अश्लील हों या जिनका लक्ष्य धमकी द्वारा पैसा ऐंठना हो।

स्पष्टीकरण १—ऐसी टीका टिप्पणी जिसमें किसी कानूनको या सरकारी नीति या प्रशासकीय कार्यकी प्रतिनिन्दा या आलोचना इस उद्देश्यसे की गयी हो कि उसमें परिवर्तन कर दिया जाय या विधिक उपायोंसे प्रतिकार मिल जाय और ऐसे शब्द भी जिनमें उन बातोंकी ओर संकेत किया गया हो जो भारतवासियोंके विभिन्न समूहोंमें शत्रुता या घृणाका भाव उत्पन्न कर रहे हों या उत्पन्न करनेकी ओर उन्मुख हों, —प्रयोजन यह कि वे निराकृत किये जायें—इस धाराका जो अर्थ लिया गया है उसके अन्तर्गत आपत्तिजनक न समझे जायेंगे।

स्पष्टीकरण २—इस अधिनियमके अनुसार कोई मैटर आपत्तिजनक है या नहीं, इसका निर्णय करते समय शब्दों संकेतों या दृश्य कारगुजारीके परिणामका ही विचार किया जायगा छापेखानेके चालक या समाचार पत्रके प्रकाशक, जिसका मामला हो के उद्देश्यका नहीं।

स्पष्टीकरण ३—"अन्तर्ध्वंस" से अभिप्राय है उस क्षति जो कारखानोंके यन्त्रसमूहको, मालको, या पुल, सड़कों तथा ऐसी ही अन्य चीजोंको इस इरादेसे पहुँचायी जाय जिससे यन्त्रावली, संचारसाधनों आदिका नाश हो जाय या उनकी उपयोगितापर हानिकारक प्रभाव पड़े।

जमानत माँगना—राज्य सरकारकी ओरसे कोई सक्षम अधिकारी दौरा जजके पास इस आशयका लिखित परिवादपत्र (कम्प्लेण्ट) भेज सकता है कि अमुक छापाखाना ऐसा समाचारपत्र छापने और प्रकाशित करनेके काममें लाया जाता है जिसमें आपत्तिजनक सामग्री रहती है। दौराजज नियमित मामलोंकी तरह इसकी जाँच करायेगा और यदि उसे इस बातकी तसल्ली हो जाय कि जमानत माँगनेके लिए पर्याप्त कारण विद्यमान हैं तो वह प्रेस चलानेवालेको जमानत जमा करनेका आदेश

कृतिस्वाम्य

कृतिस्वाम्यका अर्थ है किसी ग्रन्थ, रचना आदिको प्रकाशित करने, निकालने, या उसके सम्पूर्ण या प्रधान भागको फिरसे निकालनेका, किसी तात्त्विक रूपमें एकमात्र अधिकार और यदि वह ग्रन्थादि प्रकाशित न हुआ हो तो उसे या उसके महत्त्वपूर्ण भागको प्रकाशित करनेका अधिकार—इसका कोई अनुवाद प्रकाशित करनेका या इस तरहका काम करनेके लिए दूसरोंको प्राधिकार देनेका अधिकार भी इसमें शामिल है।

"मौलिक" काम या रचनामें ही कृतिस्वाम्य निहित रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि रचना मौलिक या उद्भावित विचारकी अभिव्यक्ति होनी चाहिये। कृतिस्वाम्य सम्बन्धी अधिनियमका विचारोंकी मौलिकतासे कोई तात्लुक नहीं, बरन् छपी हुई या लिखी हुई सामग्रीके रूपमें उनकी अभिव्यक्तिसे ही उसका सम्बन्ध है। वांछित मौलिकताका सम्बन्ध विचारकी अभिव्यक्तिसे है और इसकी नकल (अर्थात् अभिव्यक्त करनेके ढंगकी नकल) अन्य किसीकी रचनासे न होनी चाहिये, भले ही वह बिलकुल मौलिक या नये रूपमें न हो।

लेखकको अधिकार है कि वह ज्ञानके उस भण्डारसे सहायता ले जो उसके तथा अन्य लोगोंके लिए सामान्य रूपसे खुला हो। जो रचनाएँ मौजूद हैं, उनसे वह सहायता ले सकता है और उनमें अपनी ओरसे वृद्धि या सुधार कर सकता है, फिर भी कृतिस्वाम्य भंग करनेका आरोप उसपर तबतक नहीं किया जा सकता जबतक कि वह स्वयं उसके तथ्य रूपमें ईमानदारीसे परिश्रम करता है और अपनी विवेक-बुद्धि तथा कुछ क्षमताका प्रयोग करता है। कृतिस्वाम्य सम्बन्धी कानूनमें केवल इस बातकी

कृतिस्वाम्य

कृतिस्वाम्यका अर्थ है किसी ग्रन्थ, रचना आदिको प्रकाशित करने, निकालने, या उसके सम्पूर्ण या प्रधान भागको फिरसे निकालनेका, किसी तात्त्विक रूपमें एकमात्र अधिकार और यदि वह ग्रन्थादि प्रकाशित न हुआ हो तो उसे या उसके महत्त्वपूर्ण अंशको प्रकाशित करनेका अधिकार—इसका कोई अनुवाद प्रकाशित करनेका या इस तरहका काम करनेके लिए दूसरोंको प्राधिकार देनेका अधिकार भी इसमें शामिल है।

"मौलिक" काम या रचनामें ही कृतिस्वाम्य निहित रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि रचना मौलिक या उत्पादित विचारकी अभिव्यक्ति होनी चाहिये। कृतिस्वाम्य सम्बन्धी अधिनियमका विचारोंकी मौलिकतासे कोई वास्ता नहीं, वरन् छपी हुई या लिखी हुई सामग्रीके रूपमें उनकी अभिव्यक्तिसे ही उसका सम्बन्ध है। वाछित मौलिकताका सम्बन्ध विचारकी अभिव्यक्तिसे है और इसकी नकल (अर्थात् अभिव्यक्त करनेके ढंगकी नकल) अन्य किसीकी रचनासे न होनी चाहिये, भले ही वह बिलकुल मौलिक या नये रूपमें न हो।

लेखकका अधिकार है कि वह ज्ञानके उस भण्डारसे सहायता ले जो उसके तथा अन्य लोगोंके लिए सामान्य रूपसे खुला हो। जो रचनाएँ मौजूद हैं, उनसे वह सहायता ले सकता है और उनमें अपनी ओरसे वृद्धि या सुधार कर सकता है, फिर भी कृतिस्वाम्य भंग करनेका आक्षेप उसपर तबतक नहीं किया जा सकता जबतक कि वह स्वयं उसके सम्बन्धमें इमानदारीसे परिश्रम करता है और अपनी विवेक-बुद्धि तथा कुशलताका प्रयोग करता है। कृतिस्वाम्य सम्बन्धी कानूनमें केवल इस बातकी मनाही की गयी है कि कोई आदमी किसी दूसरेके परिश्रम, निर्णायक बुद्धि अथवा कुशलताका प्रतिफल स्वयं न हड़प ले। किसी व्यक्तिको इस बातकी अनुमति नहीं दी गयी है कि वह दूसरेकी मेहनतका फल, अर्थात् उसकी सम्पत्तिका विनियोजन करे।

कृतिस्वाम्यका उल्लंघन—जिस व्यक्तिको कृतिस्वाम्य प्राप्त है

फिर यह सूचना या जानकारी चाहे घटनाओंके सम्बन्धमें ही क्यों न हो। [देखिये वाल्टर बनाम स्टाइन कॉफ (१८९२), ४८°; इंटर नैशनल न्यूज सर्विस बनाम असोशियेटेड प्रेस, (१९१८) २४८ यू० एस० २१५] समाचारके स्रोतका उल्लेख कर देने मात्रसे इस तरहकी साहित्यिक चोरी न्यायोचित नहीं मानी जा सकती।

विभिन्न पत्रोंसे लेख या उद्धरण लेनेकी रस्म या प्रथा कानून द्वारा अस्वीकृत या मान्य नहीं है।



सन्देहकी प्राप्ति देख पड़ रही है किन्तु यह सम्भव इस विषयको लेकर नहीं होती कि पत्रकारोंके प्रशिक्षणका कोई मूल्य है या नहीं, वरन् मत भेद इस सम्बन्धमें है कि उसका स्वरूप कैसा हो। ब्रिटिश पत्रकारोंसे प्रभावित होकर भारतीय पत्रकार भी इस दुविधामें पड़े हुए हैं कि ऐसी योजना जिसमें पत्रकारोंकी शिक्षाका महाविद्यालयोंकी उच्च स्तरकी शिक्षाके साथ एकीकरण कर दिया गया हो, सफल हो सकेगी या नहीं। जब शिक्षा-पद्धतिकी बातें उनके समक्ष रखी जाती हैं तब इसके विरोधी पैरवी करनेवाले कहने लगते हैं कि इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ अमेरिका जैसे देशमें यह प्रभावोत्पादक, और आवश्यक भी हो सकती है, वहाँ भारतमें यह न लाभजनक है और न आवश्यक, क्योंकि यहाँ भाषा सम्बन्धी कठिनाइयाँ हैं, समाचारपत्रोंकी संख्या कम है और सामान्यतः नीचा आर्थिक स्तर है जिससे अमेरिकाकी तुलनामें यहाँ यह पेशा कम वाञ्छनीय समझा जाता है।

शिक्षाक्रमका विकास

भारतमें विश्वविद्यालयीय स्तरपर पत्रकारोंकी शिक्षाका प्रथम प्रबन्ध सम्भवतः वह था जो सन् १९३८ में अलीगढ़के मुसलिम विश्वविद्यालयमें किया गया था। इसमें उपाधिपत्र (डिप्लोमा) दिया जाता था। कक्षा का आरम्भ उस वर्ष, भारतके संघ न्यायालयके न्यायाधिपति स्वर्गीय सर शाह मुहम्मद सुलेमानने किया था।

कक्षाका प्रभार रहीम अली अलहाशमीपर था जिन्हें अंग्रेजी तथा उर्दू, दोनोंकी ही पत्रकारीका अनुभव था। प्राध्यापकके पदपर उनके नियुक्त होनेकी यही पृष्ठभूमि थी। पत्रकारीके विभिन्न अंगोंपर चुने हुए धुरंधर पत्रकारोंके व्याख्यान दिलानेकी व्यवस्था उन्होंने की थी और वे विद्यार्थियोंको समाचारपत्रोंके कार्यालयोंके परिदर्शनार्थ भी ले जाया करते थे। सन् १९४ में सर शाह सुलेमानकी मृत्यु हो जानेके बाद प्रभारी अध्यापकने "अधिकारियोंसे कुछ मतभेद हो जानेके कारण" पदत्याग कर दिया और पत्रकारीकी शिक्षण व्यवस्था समाप्त कर दी गयी।

सम्बन्धी उचित सुविधाओंका अभाव, तथा राज्यके पत्रोंकी ऐसी स्थिति जिसमें कर्मचारियोंको निर्वाहमात्रका वेतन ही किसी तरह मिल पाता है। उनके विभागमें इन विषयोंकी शिक्षा दी जाती है—रिपोर्टिंग, कापी-सम्पादन आदि, सम्पादकीय टीका-टिप्पणी लिखना, विशेषलेख लिखना, समाचारपत्रका पृष्ठ बाँधना तथा मुद्रणसौन्दर्य, समाचारपत्र सम्बन्धी कानून, लेआउट तथा विज्ञापन। उनकी सहायताके लिए भाषण समय देनेवाले ऐसे व्याख्यातागण भी हैं, जिनमें कुछ तो समाचारपत्रोंमें काम किये हुए काफी प्रसिद्ध आदमी हैं जिनमें 'टाइम्स आफ इण्डिया' का एक भूतपूर्व सम्पादक तथा कितने ही अन्य पत्रकार तथा मासिक पत्रोंके सम्पादक आदि भी शामिल हैं। कोई पजाबीमें पढ़ाता है तो कोई हिन्दीमें—यद्यपि बहुत सी कक्षाओंकी पढ़ाई अंग्रेजीमें होती है। यह पाठ्यक्रम, जिसमें उपाधिपत्र भी दिया जाता है, सिर्फ महाविद्यालयों के स्नातकोंके लिए खुला है। प्रयोगशाला, विवाद तथा व्याख्यानों द्वारा शिक्षा प्रदान करनेके साधनोंका प्रयोग किया जाता है।

मद्रासमें शिक्षाकी व्यवस्था

मद्रास विश्वविद्यालयने सन् १९४७ में पत्रकारोंकी पढ़ाई शुरू की और वह डाक्टर आर. बालकृष्णनकी देखरेखमें आज भी जारी है। वे अर्थशास्त्रके सुख्यात अध्यापक हैं जो पत्रकार-कलाके ज्ञानका दावा नहीं करते। वे मद्रासके प्रमुख पत्रकारों, सम्पादकोंकी व्याख्यानमालाकी व्यवस्था करते हैं जिनमें भारतके दो बड़े दैनिक पत्रों 'दि मैड्रास मेल' तथा 'दि हिन्दू' के सर्वोच्च सम्पादक भी शामिल हैं। वे स्वयं केवल विज्ञापन सम्बन्धी शिक्षा देते हैं। वे सब मिलकर डिप्लोमा-युक्त पत्रकार-कलाकी परीक्षाके लिए कई विषयोंकी शिक्षा प्रदान करते हैं जिनमें रिपोर्टिंग, कापीका सम्पादन, मासिक पत्रोंके लिए फीचर (रूपक-)लेख और सम्पादकीय पद्धति तथा कला शामिल है। इसके सिवा अलग अलग कक्षाओंमें इन विषयोंकी भी पढ़ाई होती है—समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताका इतिहास, पत्रकारोंका नीतिशास्त्र, लेखादि लिखना, प्रेसी राष्ट्रीय और

अध्ययन-शाला स्थापित कर उसके जरिये शिक्षा प्रदान करनेकी व्यवस्था की जा सकती है। पत्रकारोंके लिए ऐसी स्वतन्त्र अध्ययन-शाला भारत में पहले कभी न थी और आज भी उसकी सम्भावना स्पष्ट नहीं दिखाई दे रही है। धन और स्थानकी कमीके कारण यह मूल योजना उपाधि-पत्र दिलानेवाली शिक्षा योजनाके रूपमें ही, जो कमोबेश कलकत्तेकी योजनासे मिलती-जुलती भी, रखी जा सकी। अमीतक इसका प्रारम्भ नहीं किया जा सका है अंशतः तो अनुभवी शिक्षकोंकी कमीके कारण और अंशतः अन्य लोगों द्वारा अधिक महत्त्वपूर्ण समझे जानेवाले विषयों की शिक्षाके लिए जगहका दबाव पड़नेके कारण।

कलकत्तेकी शिक्षण-व्यवस्थामें पत्रकारीके बाहरके कतिपय विशिष्ट विषयोंकी शिक्षापर, पृष्ठभूमिके रूपमें, अधिक जोर दिया गया है, इसलिए इस एक दृष्टिसे वह सबसे सुस्थिर (स्वस्थ,'साउंड') है। पत्रकार कलाकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए भारतके विभिन्न विश्वविद्यालयोंसे शिक्षार्थी आते हैं जिनका इन विषयोंका अध्ययन विभिन्न स्तरों या मात्राओंका होता है—सांविधानिक कानून, समाज शास्त्र, राजनीति विज्ञान, साहित्य और कला। कलकत्तेके शिक्षाक्रमका प्रभार जिनके ऊपर है और जिनमें अतीत कालके तथा आजके प्रमुख सम्पादक शामिल हैं, उन्होंने इस बातकी प्रत्यपेक्षा पहले ही कर ली थी कि भूमिका रूपमें पत्रकारोंके लिए आवश्यक इन विषयोंका अध्ययन सबका समान न होकर किसीका कम और किसीका ज्यादा होगा ही, इसलिए उपाधि-पत्र प्राप्त करनेके लिए उन्होंने दो वर्षकी पढ़ाई रखी, जिसमें जहाँ जितनी कमी या त्रुटि हो, दूर कर दी जाय। यह नीति यह अच्छी तरह जानते हुए भी अंगीकार की गयी कि ऐसा करनेसे भरती होनेवाले विद्यार्थियों में कई धीरे-धीरे हट जायेंगे, और अन्तमें हुआ भी ऐसा ही।

एक और तरहसे कलकत्तेकी योजना अन्य योजनाओंसे बढ़कर है—उसमें इस बातका आग्रह है कि प्रत्येक ऐसे व्यक्तिको जो उपाधि-पत्र प्राप्त करे, पहलेसे ही पत्रकारोद्योगमें स्थान मिलनेका आश्वासन मिल जाना

बाधाओंका सामना करना पड़ा। सन् १९५१ में शिक्षाका काम पेशेवर पत्रकार प्रोफेसर एन कृष्णामूर्तिको सौंप दिया गया, जिन्होंने पत्रकारके प्रोफेसर सिहके ही समान, मिसूरी विश्वविद्यालय (अमरिका) से पत्रकार कलाकी शिक्षा प्राप्त की थी। सन् १९५१ में भरती हुए विद्यार्थियोंकी संख्या २४ थी १९५२ में १८ रह गयी। पत्रकारकला सम्बन्धी पुस्तकोंका अच्छा समूह इकट्ठा कर लिया गया और अभ्यासके लिए एक पत्र भी निकाला जाने लगा।

मैसूरका शिक्षाक्रम इस मानेमें बिल्कुल निराला है कि केवल यही ऐसा है जो बी ए. की उपाधि प्राप्त करनेके पहले ही सीखा जा सकता है, जब कि अन्य सब स्थानोंके शिक्षाक्रम पाँचवें वर्षमें ही शुरू किये जा सकते हैं।

सन् १९५१ के शुरूमें आगरा, गुजरात तथा उसमानिया विश्वविद्यालयोंमें भी इसके शिक्षणकी व्यवस्था करनेपर विचार किया जा रहा था। पत्रकारीसे सम्बन्ध रखनेवाला थोड़ासा विशिष्ट काम, फरवरी १९५१ में इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इन्सटीटयूटमें भी शुरू किया गया था।

सबसे नया बड़ा शिक्षाक्रम हिस्लाप कालेजमें शुरू किया गया है, जो नागपुर विश्वविद्यालय (मध्यप्रदेश) से सम्बद्ध है।

हिस्लॉप कालेजका शिक्षाक्रम

नागपुर विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध एक हजार विद्यार्थियोंवाले हिस्लाप कालेजमें पत्रकारकलाका शिक्षाक्रम शुरू करनेका आवेदन सन् १९४९ में विश्वविद्यालयकी एक समितिने किया था किन्तु सन् १९५२ तक वह कार्यान्वित न किया जा सका। अन्य विश्वविद्यालयोंके शिक्षाक्रमोंसे यह भिन्न है। सिद्धान्त इसमें उपाधिपत्र पानेके लिए एक वर्षका पाठ्यक्रम रखा गया है और यह अनुभवी पत्रकारोंको बिना कालेजमें शिक्षा प्राप्त किये ही प्रमाणपत्र दे सकता है। जो लोग उपाधिपत्र लेना चाहते हों उनके लिए आवश्यक है कि उन्होंने बी ए. के नीचकी पढ़ाई सम्मान पूर्वक समाप्त की हो।

वाले तथा दो आधे समय काम करनेवाले व्यक्ति थे) संख्या बढ़ा दी जाय और कक्षायें भी दूनी कर दी जायें जिससे स्नातक-पूर्व उपाधिपत्र भी दिया जा सके और स्नातक तथा स्नातक पूर्व दोनों स्तरोंपर कामका उपक्रम किया जा सके। इस तरह स्नातकोंकी वास्तविक शिक्षा पाँचवे वर्षमें होगी।

नियमित्रत भरती द्वारा केवल ४२ विद्यार्थी ही इस कक्षामें रखे जा सकते हैं। उनमेंसे अधिकतर तो कालेजोंके ग्रेजुएट और पेशेवर पत्रकारी में करीब करीब आधे व्यक्ति अनुभवी मनुष्य हैं। इस विभागमने कमसे-कम कुछ विद्यार्थियोंको परीक्षाओंके कठिन चंगुलसे बचाये रखा है। नागपुर विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने परीक्षामें प्राप्त होनेवाले अंकोंकी विभाजन व्यवस्था इस तरह की है जिससे छात्रके उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होनेका प्रश्न अन्तमें अध्यापकोंके ही हाथमें रह जाता है, परीक्षकोंके हाथमें नहीं।

हिस्लॉप कालेजके इस विभागका (जो नागपुर विश्वविद्यालयका भी विभाग है) निदेशन विश्वविद्यालयके निकाय, पत्रकारी शिक्षाके बोर्ड के हाथमें है। इस समितिके सदस्य साधारणतः विभागीय प्राध्यापक वर्ग (फैकल्टी) से चुने जाते हैं किन्तु नागपुरमें पत्रकारी एक छोटी सी इकाईके रूपमें है, अतः इस समूहमें विभागीय प्राध्यापक वर्गके तीन, नागपुरके पत्रकार तीन तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयके विभागीय प्राध्यापक वर्गका एक आदमी रहता है।

शिक्षण-संस्थाओं सम्बन्धी बाधायें

भारतके कुछ हिस्सोंमें थोड़ी सी बाधायें हो (निषेधात्मक ढंगकी) काम करनेवाले पत्रकारों द्वारा, विशेष कर उनके द्वारा जो महाविद्यालय-में शिक्षा प्राप्त किये बिना ही महत्त्वपूर्ण स्थितियोंमें पहुँच गये हैं, उपस्थित की जाती हैं, जैसे अभ्यासके लिए विद्यार्थियोंका अपने कार्यालयोंमें आने देनेकी अनुमति न देना किन्तु इसके साथ ही शिक्षण-संस्थाओंने भी कुछ बाधायें खड़ी कर रखी हैं।

वाले तथा दो आधे समय काम करनेवाले व्यक्ति थे) संस्था बढ़ा दी जाय और कक्षायें भी दूनी कर दी जायें जिससे स्नातक पूर्व उपाधिपत्र भी दिया जा सके और स्नातक तथा स्नातक पूर्व दोनों स्तरपर कामका प्रबन्ध किया जा सके। इस तरह स्नातकोंकी वास्तविक शिक्षा पाँचवें वर्षमें होगी।

नियन्त्रित भरती द्वारा केवल ४२ विद्यार्थी ही इस कक्षामें रखे जा सकते हैं। उनमेंसे अधिकतर तो कामकोंके मेंबुपर और पर्वेबर पत्रकारी में करीब-करीब आधे व्यक्ति अनुभवी मनुष्य हैं। इस शिक्षाक्रमने कमसे-कम कुछ विद्यार्थियोंको परीक्षाओंके कठिन चंगुलसे बचाये रखा है। नागपुर विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने परीक्षामें प्राप्त होनेवाले अंकोंकी विभाजन-व्यवस्था इस तरह की है जिससे छात्रके उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होनेका प्रश्न अन्तमें अध्यापकोंके ही हाथमें रह जाता है, परीक्षकोंके हाथमें नहीं।

हिस्लॉप कालेजके इस विभागका (जो नागपुर विश्वविद्यालयका भी विभाग है) निरीक्षण विश्वविद्यालयके निकाय पत्रकारी शिक्षाके बोर्डके हाथमें है। इस समितिके सदस्य साधारणतः विभागीय प्राध्यापक वर्ग (फैकल्टी) से चुने जाते हैं किन्तु नागपुरमें पत्रकारी एक छोटी सी इकाईके रूपमें है, अतः इस समूहमें विभागीय प्राध्यापक वर्गके तीन, नागपुरके पत्रकार तीन तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयके विभागीय प्राध्यापक वर्गका एक आदमी रहता है।

शिक्षण-संस्थाओं सम्बन्धी बाधायें

भारतके कुछ हिस्सोंमें थोड़ी सी बाधायें तो (निषेधात्मक ढंगकी) काम करनेवाले पत्रकारों द्वारा, विशेष कर उनके द्वारा जो महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त किये बिना ही महत्त्वपूर्ण स्थितियोंमें पहुँच गये हैं, उपस्थित की जाती हैं जैसे अभ्यासके लिए विद्यार्थियोंको अपने कार्यालयोंमें आने देनेकी अनुमति न देना किन्तु इसके साथ ही शिक्षण-संस्थाओंने भी कुछ बाधायें खड़ी कर रखी हैं।

भाषं वर्णन पुस्तकें ही प्रकाशित हुई हैं। ये विभिन्न भाषाओंमें लिखी गयी हैं और प्रायः दुष्प्राप्य सी हैं। वस्तुतः भारतीय समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें भी लिखी गयी कुछ पुस्तकोंकी संख्या ५० से अधिक नहीं। इनमें या तो पत्रोंका इतिहास दिया गया है, या पुराने संस्मरण लिखे गये हैं या फिर समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रता, समाचारपत्र और राजनीतिक प्रश्न इत्यादि या ऐसे ही अन्य विषयोंकी चर्चा की गयी है। (ग्रन्थ सूची परिशिष्ट १ देखिये)।

प्रायः ब्रिटेन तथा अमेरिकामें छपी पुस्तकोंका ही आदर किया जाता है और जहाँ सम्भव होता है उन्हींसे काम चलाया जाता है किन्तु बहुतसे विद्यार्थी तो अक्सर अपने लिए इन्हें खरीद ही नहीं सकते क्योंकि इनके दाम अधिक होते हैं। हर एक शिक्षाक्रमके लिए एक या दो पुस्तकें निर्धारित कर दी जाती हैं और अन्य पुस्तक अनुपस्थित कर दी जाती हैं जिन्हें विद्यार्थी पुस्तकालयोंसे लेकर पढ़ लेते हैं। अमेरिकाके पत्रकारकला विद्यालयोंमें साधारणतः जिस तरहकी पाठ्यपुस्तक प्रयुक्त होती है उसका दाम प्रायः तीन-चार महीनोंके शिक्षणशुल्कके बराबर होता है। ऐसी पाठ्य पुस्तक पेशेवर पत्रकारोंके समाचार कक्षमें पहुँच नहीं पातीं, जिस तरह वे अन्य देशोंमें पहुँच पाती हैं। समाचारपत्रों आदिमें काम करने वाले बहुतसे पत्रकारोंको तो भारतीय पत्रकारकला सम्बन्धी उन दो चार पुस्तकोंका भी ज्ञान नहीं जो यहाँ उपलब्ध है और अन्य देशोंमें इसका जो साहित्य उपलब्ध है उसकी भी केवल थोड़ी-सी जानकारी उन्हें रहती है।

फिर विश्वविद्यालयोंके अपने पुस्तकालयों तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें भी पत्रकारकला सम्बन्धी शायद ही एक दो पुस्तक मौजूद रहती हैं। समाचारपत्रोंके मौक्से मालिकों तथा सम्पादकोंके निजी संग्रहोंमें पत्रकारकला सम्बन्धी पुस्तकें पायी जा सकती हैं पर उनमें मुख्यरूपसे अमेरिका तथा ब्रिटेनकी दृष्टिसे समाचारपत्रों सम्बन्धी कानून तथा व्यवस्था आदिका वर्णन रहता है। नागपुर विश्वविद्यालय तथा हिस्लॉप

पत्र-सम्पादक सम्मेलन, भारतीय श्रमिक-पत्रकार-संघ तथा 'दक्षिण भार तीय पत्रकार संघ' जैसी क्षेत्रीय संस्थाएँ भी। अ भा पत्र-सम्पादक सम्मेलन, जिसके लगभग २०० सदस्य हैं, सन् १९४९ में नागपुरके तीन पत्रकारोंकी एक कमेटी नियुक्त कर दी। इसे "पत्रकारोंको उच्च स्तरका प्रशिक्षण देनेके उद्देश्यसे एक अखिल भारतीय पत्रकार-कला विद्यालय स्थापित करनेके लिए योजना बनाने" का काम सौंपा गया और आदेश दिया गया कि 'तीन महीनोंके भीतर अपनी रिपोर्ट स्थायी समितिके पास भेज दे।'

प्रस्तावित विद्यालय भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालयके प्रतिनिधियों तथा अ० भा० पत्र सम्पादक-सम्मेलन और अन्य प्रस्वीकृत पत्रकार संस्थाओं द्वारा नियन्त्रित होगा। भरती किये जानेवालोंके लिए पाँच वर्षका व्यावहारिक अनुभव तथा दो वर्षतककी महाविद्यालयकी शिक्षा प्राप्त किये रहना आवश्यक होगा। केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारें इसके लिए धनकी व्यवस्था करेंगी और अ भा पत्रसम्पादक सम्मेलन भी इसकी कुछ सहायता करेगा। हिन्दी तथा अंग्रेजी ही शिक्षाका माध्यम होगी।

प्रस्तावित पाठ्यक्रममें ये विषय रखे गये—समाचारोंकी रिपोर्ट लेना और लिखना, समाचारोंका सम्पादन, अग्रलेख टिप्पणी लिखना, जनमत तथा प्रचारकार्य, सचित्र पत्रकारी पत्रकारोंकी नीति-संहिता पत्रकारी सम्बन्धी कानून चित्र बनाना फोटो लेना आदि शीघ्रलिपि तथा मुद्रलेखन और अर्थशास्त्र, राजनीतिविज्ञान नागरिकशास्त्र एवं इतिहासमें पूर्वपीठिकाके रूपमें किया गया कुछ काम।

अ भा पत्रसम्पादक सम्मेलनके सदस्योंसे आशा की जायगी कि वे स्थानीय पत्रोंसे सम्बद्ध होकर व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करनेकी योजना को कार्यान्वित करनेमें सहयोग करेंगे। कुछ विषयोंके प्रशिक्षणके लिए प्रयोगशालाएँ भी स्थापित की जायँगी।

स्थायी समितिकी रिपोर्टपर अभी कोई काररवाई नहीं की गयी किन्तु

विश्वविद्यालयमें ही अनेकभाषी पत्रकारोंकी शिक्षा अमेरिका तथा अन्य देशोंमें भले ही ठिकानेसे चलायी जा सके किन्तु भारतमें यह चल नहीं सकती !

पहला उत्तर तो यही है कि जो भारतीय पत्रकार तथा शिक्षा विशे पत्र इस मतके माननेवाले हैं, उनके सम्बन्धमें प्रायः ऐसा लगता है कि उन्हें इस बातका करीब-करीब कुछ भी ज्ञान नहीं है कि भारतमें अन्य धनके इस क्षेत्रमें कितना काम हो चुका है और दुनियाके अन्य भागोंमें जो कुछ हुआ है उसकी भी उन्हें बहुत थोड़ी जानकारी है। अधिकसे अधिक वे यही सोच सकते हैं कि पत्रकार कला-विद्यालय एक तरहके व्यापारिक विद्यालयके सिवा और कुछ भी नहीं है। उन्हें बिल्कुल नहीं मालूम कि ऐसे विद्यालयोंमें गवेषणा सम्बन्धी कार्य भी होता है, आत्मा भिव्यक्तिके अवसर मिलते हैं तथा जिम्मेदारीकी तथा प्रचार साधनोंके उचित प्रयोगकी शिक्षा दी जाती है। वे नहीं जानते कि यहाँ शिक्षा-सम्बन्धी समस्त अनुभवको विद्यार्थियोंके लिए अधिक सार्थक एवं अधिक मनोरंजक बनानेका प्रयत्न किया जाता है।

फिर भी विरोधियोंके सब तर्क सारहीन नहीं हैं। उनमें सबसे प्रबल है भाषा सम्बन्धी कठिनाइयोंकी विद्यमानता। शिक्षा, शासन तथा व्यापारादिमें हिन्दी क्रमशः अंग्रेजीका स्थान ग्रहण करती जा रही है। फिर भी यह स्थिति आनेमें अभी बहुत वर्ष लगेंगे जब भारतके अधिकतर लोग अपनी स्थानीय भाषाके सिवा उसका भी प्रयोग कर सकेंगे। फिर भी 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के दिल्ली संस्करणके सम्पादक और पत्रकार-कला शिक्षणके समर्थक श्री डी॰ आर॰ मनकेकरको पत्राक पत्रकारकला विद्यालयके विद्यार्थियोंसे साफ-साफ कहना पड़ा कि ' 'जब कोई भारतीय पत्रकारिताके भविष्यकी बात करता है तो उसका मतलब अंग्रेजीकी पत्रकारिता नहीं रहता। अंग्रेजी पत्रकारिताने बहुत अच्छा और सुन्दर काम किया है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु अब उसके दिन लद गये। भविष्य अब भारतीय भाषाओंकी, विशेष कर हिन्दीकी, पत्रकारिताके

कि जिन लोगोंको पत्रकारकलाकी शिक्षा प्राप्त होगी, उनके सामने मुख्य समस्या समुचित काम प्राप्त करनेकी होगी।"*

उनके इस कथनका कारण उनका यह ज्ञान है कि भारतमें सब तरह और सब भाषाओंके कुल १०० ही दैनिक, मासिक तथा अन्य पत्र हैं और इनमेंसे बहुत-से ऐसे हैं जिनमें अक्सर एक ही आदमी काम करता है। जो हो, उन्होंने आल इण्डिया रेडियोका खयाल नहीं किया जिसके प्रसारण-केन्द्रोंकी संख्या दो दर्जनतक पहुँच चुकी है और जिसके द्वारा प्रसारित समाचारोंका क्षेत्र तथा परिमाण बराबर बढ़ता जा रहा है। फिर व्यापारिक पत्रों तथा विशेष प्रकारके अन्य पत्रों की भी धड़ल्लाम वृद्धि हो रही है, जनसम्पर्क तथा जन-सम्वेदन (पब्लिसिटी) सम्बन्धी कार्योंका भी विस्तार हो रहा है समाचार-समितियोंका जाल फैलता जा रहा है फिल्मोंके लिए कथा, कविता आदि तैयार करनेका नया क्षेत्र सामने आ रहा है तथा पत्रकारोंके बाहरके कितने ही क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें भी पत्रकारोंकी कुशलताकी आवश्यकता पड़ने लगी है।

तीसरी आपत्तिका निराकरण उतना सरल नहीं है। अल्पवेतन श्रम, काम करनेकी असुविधाजनक स्थिति, और आगामम भविष्यकी अनिश्चितता—आजकी अखबारी दुनियामें काम करनेवाले यहाँके पत्रकारोंकी यही वास्तविक स्थिति है। 'हिन्दुस्तान एक्सप्रेस' दिल्लीके सम्पादक श्री पू॰ भास्कररावने पत्रकारके विद्यार्थियोंको सम्बोधन करते हुए साफ साफ कह दिया था कि आप लोग "आराम और ऐशकी जिन्दगीकी आशा न करें। काम कड़ा है, आध्यात्मिक प्रतिफल तो सन्तोषजनक है किन्तु खेद है कि इस पेशेमें धनके रूपमें अच्छा पारितोषिक नहीं मिलता। आपका जीवन संघर्षका जीवन होगा, तपस्याका जीवन होगा और कुछ मामलोंमें तो वह घोर दरिद्रताका भी जीवन हो सकता है।"

किन्तु कितने ही बुद्धिसम्पन्न एवं महत्त्वाकांक्षी लोगोंके लिए ये परिस्थितियाँ दुस्तर बाधायें नहीं मानी जा सकतीं। ये लोग अपने चुने

* कलकत्ता दिया गया पत्र १८ अप्रैल १९५२

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि भारतकी सभी मुख्य मुख्य भाषाओंके क्षेत्रमें २५ विद्यालय या पत्रकारकला विभाग को विश्वविद्यालयोंसे सम्बद्ध हों स्थापित करनेकी योजना बना लेना चाहिये। उदाहरणके लिए हिन्दी, मराठी, उर्दू, बंगाली, मलयालम्, गुजराती, तेलगू और तामिल पत्रकारों की स्थिति इतनी सुदृढ़ और सुविकसित हो चुकी है कि उनमेंसे प्रत्येक अभी बहुत वर्षों तक देशके भीतर बनी रहेगी। यह ठीक है कि मिश्र विद्यालयोंमें हिन्दी या अंग्रेजीमें पत्रकारकलाकी शिक्षणव्यवस्था होनेसे आवश्यक सेवाके लिए पत्रकार तैयार करनेमें बहुत मदद मिलेगी, फिर भी यह उतना उतनी उपयोगी न होगी जितनी विद्यार्थीकी मातृभाषामें दी जानेवाली शिक्षा हो सकती है।

इसके समर्थनमें एक घटना जो हिस्कॉप कालेजमें हुई थी, दी जा सकती है। भारत आनेके बहुत पहले मैंने भारतीय समाचारपत्रोंके इतिहासपर लिखी गयी पुस्तककी खोज की। सबसे अच्छी किताब जो मुझे मिल सकी, मारगेरिटा बार्न्सकी लिखी "दि इण्डियन प्रेस" (भारतीय समाचारपत्र) थी। यह सन्तोषजनक न थी क्योंकि मैंने देखा कि इसमें केवल १९१०–४० तककी ही घटनाओंका समावेश हुआ है। इसके सिवा भारतीय समाचारपत्रोंके अन्य इतिहासोंकी तरह इसमें भी मुख्यरूपसे उन झगड़ोंका ही वर्णन मिलता है जो समाचारपत्रों तथा सरकारके बीच हुए। बहुत-सी महत्त्वपूर्ण प्राविधिक तथा व्यावसायिक विकास सम्बन्धी घटनाओंका उसमें कोई वर्णन नहीं।

फिर भी कालेजके पुस्तकालयाध्यक्षको एक दिन अकस्मात् एक पुस्तक मिल गयी, जो 'भारतमें समाचारपत्रोंका कार्य' सम्बन्धी सामान्य अध्ययनके लिए अधिक उपयोगी पुस्तक है। इसका नाम है 'हिस्ट्री आफ न्यूज पेपर्स' और लेखक हैं श्री बी. के. जोशी तथा श्री आर. के. लेले। यह सन् १९५१ में बम्बईसे प्रकाशित हुई है किन्तु यह मराठीमें है अतः हिस्लॉप कालेजके पत्रकारकला विभागके अमेरिकन प्राध्यापकों आदिके लिए ही अपठनीय नहीं है वरन् उनके आधेसे अधिक विद्या

नहीं है, क्योंकि दोनों ही योजनाओंके अनुसार विद्यार्थीको अभ्यास प्रारंभिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है और अक्सर उन सामान्य विषयोंपर उसका पूर्णाधिकार नहीं होने पाता जिनकी आधुनिक पत्रकारको पड़ती है।

भारतमें विद्यार्थियोंके लिए राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान अथवा समाज विज्ञानका अध्ययन किये बिना ही बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर लेना सम्भव है किन्तु ये विषय ऐसे हैं जिनका ज्ञान वर्तमान पत्रकारोंकी सर्वोत्तम तैयारीके लिए आवश्यक है विशेषकर इस समयमें जहाँ सामाजिक विकासका काम तेजीसे चल रहा है। पत्रकारोंका शिक्षामें वे पत्रकारकलाके व्यावसायिक अंगका अध्ययन किये बिना ही, या उसका उड़ता उड़ता ज्ञान हासिल कर ही उपाधियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

छपाई और मुद्रणयन्त्र समाचारपत्रोंके लिए कागज बनाना, आकाशवाणी सम्बन्धी पत्रकारी, विशिष्ट पत्रकारी तथा पत्रकारकला सम्बन्धी एवं समाचारपत्र सम्बन्धी अनुसन्धान आदिकी बहुत ही कम व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। इस समय सभी शिक्षाक्रम स्नातकोत्तर स्तरपर चलाये जा रहे हैं किन्तु इनमें एक भी ऐसा नहीं है जिसकी उपाधि वास्तवमें स्नातक कोटिकी हो। इस आधारपर भारतमें पत्रकारकलाकी शिक्षा अधिक गहराईतक नहीं पहुँच सकती।

पत्रकारिताकी शिक्षा, अपने सर्वोत्तम रूपमें महाविद्यालयोंके स्नातक पूर्व वर्गोंमें, प्रथम या द्वितीय वर्षमें ही आरम्भ हो जानी चाहिये। इसमें अधिक देर करना ठीक नहीं। इसका यह आशय नहीं कि विद्यार्थियोंको चार वर्षतक पत्रकार कक्षाओंके सिवा अन्य किसी कक्षामें नहीं जाना चाहिये। इसका मतलब केवल इतना ही है कि उन्हें सामान्य ढंगसे ही बी ए. की पढ़ाई जारी रखना चाहिये किन्तु उनका बी ए का पाठ्यक्रम इस तरहसे बनाया जाना चाहिये कि जीवनके सभी क्षेत्रोंके लिए आवश्यक सामान्य शिक्षा उन्हें मिल सके और इसके साथ ही पत्रकारोंके कुछ चुने हुए विषय, एक या दो प्रतिवर्षके हिसाबसे, चार वर्षतक

ही जा सकेगी जो 'पत्रकारकलामें बी॰ ए॰' कहलायेगी, या मामूली बी॰ ए॰ जिसमें पत्रकारकला तथा कतिपय सामाजिक विषयोंके अध्ययनपर मुख्य रूपसे ध्यान दिया गया हो।

वे विद्यार्थी जिन्होंने बीचमें कोई भी एक उपाधि प्राप्त कर ली हो या कालेजकी डिग्री प्राप्त वे पेशेवर पत्रकार जो और आगेका प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहते हों, तब वास्तविक स्नातकीय शिक्षाके लिए चुने जा सकेंगे। यह शिक्षा उन १५ विश्वविद्यालयोंमेंसे, जो पत्रकारोंकी स्नातक पूर्वकी शिक्षा प्रदान करते हैं, कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयोंमें ही दी जा सकेगी। इन विद्यालयोंका देशमें इस तरह समान वितरण होना चाहिये जिससे सभी स्थानोंके लोगोंके लिए वे आसानीसे उपलब्ध हो सकें। स्नातक शिक्षाका यह क्रम ठिकानेसे चलाया जा सकता है पर यह विविध रूपसे विद्यार्थीकी पूर्व भूमिपर अवलम्बित रहेगा।

पत्रकारकलाके विद्यालयों या विश्वविद्यालयीय विभागोंके स्नातक एक या दो वर्षतक पत्रकारोंके उन विविध अंगोंका उच्चाध्ययन करेंगे जिनका आरंभ उन्होंने स्नातक-पूर्वकाल्में किया था। वे इनमेंसे किसी एकपर विशेष ध्यान दे सकते हैं—मासिक पत्रके सम्पादनका कार्य, दैनिकपत्र सम्बन्धी कार्य, विज्ञापन, प्रचारादि सम्बन्धी काम, या फिर प्रकाशविषयक कार्य। जो लोग अपने कार्यके एक हिस्सेके रूपमें कोई गवेषणा ग्रन्थ लिखना चाहें, उन्हें दो वर्ष लगेंगे और उन्हें उस विषयकी ओर संकेत करनेवाली एम॰ ए॰ की उपाधि मिलेगी। सामान्य अध्ययन करनेपर जिसमें गवेषणा कार्य न किया गया हो, पत्रकारकलामें एम॰ए॰ की उपाधि मिलेगी और जिन्होंने गवेषणा-काम किया हो, उन्हें पत्रकारीमें एम॰ एस-सी॰ की उपाधि दी जायगी।

मान्यताप्राप्त विश्वविद्यालयोंके ऐसे स्नातकोंको जिन्होंने कालेजमें रहते हुए पत्रकारोंकी शिक्षा नहीं प्राप्त की, इस विषयकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेमें दो या तीन वर्ष लगेंगे। यदि उन्हें शासन, कानून, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र या अन्य विषयोंकी जितनी चर्चा पहले की जा

१६ भारतीय पत्रकारीका भविष्य

भारतमें आज पत्रकारीकी स्थिति, जैसा कि श्री वी एस श्रीनिवास शास्त्रीने कहा था, "एक वृद्धिशील शिशु" के सदृश है। उन्हें इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि यदि इसके पालन-पोषण या निगरानीकी उचित व्यवस्था न हुई और मनमाने तौर पर इसका विकास होने दिया गया तो कहीं ऐसा न हो कि यह एक "विकलांग एवं दुर्दान्त दैत्य" का रूप ग्रहण कर ले।

यह "वृद्धिशील शिशु" बहुत ही निष्प्रभ और दुर्बल, रक्त विहीन-सा, है। भारतमें समाचारपत्रोंका वास्तविक रोग है उनकी कम संख्या, उनका कम प्रचार और उनके अपर्याप्त वित्तीय साधन। देशमें थोड़े ही तो समाचारपत्र हैं। इनमें भी उनकी संख्या बहुत कम है जो किसी तरह अपना खर्च चला लेते हों और दो चार-दस पत्र ही ऐसे हैं जो मजेमें चल रहे हों। इस अप्रिय स्थितिका ही यह परिणाम है कि पत्रकारोंमें स्थायी बेकारी या अर्द्धबेकारी फैली रहती है, इतना कम वेतन उन्हें मिलता है जो उपहासास्पद ही कहा जा सकता है और फरिश्तोंके भाग मनकी तरह उन्हें सुख-सुविधायें भी बहुत ही कम प्राप्त हैं।

आइये हम ब्रिटेन तथा भारतके समाचारपत्रोंकी प्रचार-संख्याओंकी तुलना करें। ब्रिटेनमें जहाँ प्रौढ़ोंकी संख्या १ ६ करोड़ है, समाचार पत्रोंकी १ करोड़ प्रतियाँ प्रति दिन बिक जाती हैं, जैसा कि श्री राबर्ट सिनक्लेयरने ब्रिटिश रेडियोपर भाषण करते हुए बतलाया था। इसमें १५० समाचारपत्र तथा १५० मासिक पत्रादि शामिल हैं। इसके विपरीत भारतमें, जिसके प्रौढ़ोंकी संख्या १ करोड़ है कुल १०० पत्र पत्रिकाएँ हैं जिनकी प्रचार-संख्या १० लाख ही है, जैसा कि दक्षिण भारतीय पत्रकार संघके अध्यक्ष श्री एन रघुनाथ ऐयरने एक वार्षिक अधि-

और फिर हर साल इसी अनुपातसे उनकी संख्या बढ़ती जायगी। इन पाँच करोड़ साक्षरोंके लिए इस समय समाचारपत्रोंकी वास्तविक प्रचार संख्या केवल १० लाख है। यह सत्य है कि प्रत्येक साक्षर व्यक्ति इस स्थितिमें नहीं है कि वह समाचारपत्र खरीद सके। किन्तु विज्ञापन पत्रकी के ज्ञापनमें बताया गया है कि "इस देशमें जिन लोगोंकी आमदनी अपेक्षाकृत बहुत कम है, उनमें भी ऐसी वस्तुओंकी आश्चर्यजनक बिक्री होती है जिन्हें हम वास्तवमें विलासकी सामग्री ही कह सकते हैं।" इसके बाद उसमें यह भी कहा गया है कि "सिनेमा तथा ऐसी ही अन्य विलासकी या आरामकी वस्तुएँ और अंशतः समझी जानेवाली विलास वस्तुएँ इतनी लोकप्रिय हैं कि उनके आधारपर यह सुझाव नहीं दिया जा सकता कि जितने मनुष्योंकी कल्पना कोई व्यक्ति कर सकता है, उनमेंसे आधे लोगोंकी भी हैसियत इतनी गिरी हुई है कि वे एक दैनिक का या कमसे कम साप्ताहिक पत्रका खर्च भी बरदाश्त न कर सकते हों।"

इसका क्या कारण है कि भारतमें समाचारपत्र उस सीमातक भी उन्नति नहीं कर सके जिसतक उन्नति करना यहाँकी परिस्थितियोंमें पूर्णतः सम्भव था? इसका पता लगानेसे बड़ा लाभ होगा। यदि प्रेस कमीशनकी रिपोर्टमें इस प्रश्नका ऐसा उत्तर मिल सके जिसपर बहुत कुछ भरोसा किया जा सके तो उससे बड़ी सहायता मिलेगी। भारतमें समस्या यह नहीं है कि जंगलमें बेतहाशा बढ़ती हुई वनस्पतियोंको काट-छाँटकर किस तरह ठिकानेका रूप दिया जाय वरन् समस्या इस बातका कारण जाननेकी है कि छोटा पौधा विकसित होकर विशाल-वृक्षका रूप क्यों नहीं ग्रहण करने पाता?

देशी भाषाओंकी पत्रकारी

यह विशाल वृक्ष बन जा सकता है, इसमें तो सन्देहकी कोई गुंजा इश ही नहीं। देशी भाषाओंके पत्रोंका भविष्य विशेष रूपसे उत्साहजनक है। साक्षरताकी वृद्धि जिसकी चर्चा मैं ऊपर कर चुका हूँ, मुख्य रूपसे प्रायः देशी भाषाओंमें ही हो रही है। साक्षरताकी वृद्धिके आधारपर समा

नहीं हो पाया है। विदेशी विज्ञापनदाता, जो प्रमुखतः देशी भाषाओंसे भलीभाँति परिचित नहीं हैं, प्रभुत धीरे धीरे ही देशी भाषाओंके पत्रोंमें विज्ञापन छपवानेको तैयार हो रहे हैं। भारतीय व्यवसायियोंमें वा विज्ञापन छपवानेकी इच्छाका विकास और भी मन्दगतिसे हो रहा है। इसके सिवा जो लोग देशी भाषाओंके पत्रोंमें काम करते हैं, उनमेंसे अधिकतर साधन-विहीन या अल्प-साधन-सम्पन्न ही होते हैं। और अब मान विचार धारा प्रकट करनेके सर्वोत्तम साधनके रूपमें भाषाका पूर्ण विकास होना भी अभी शेष है। इन तथा ऐसी ही अन्य कमियों या त्रुटियोंका वर्णन श्री आर. आर. भटनागरने अपनी पुस्तक 'दि राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ हिन्दी जर्नलिज्म' में बड़ी खूबीके साथ किया है।

इन कठिनाइयोंपर धीरे धीरे विजय प्राप्त की जा रही है और हिन्दीकी पत्रकारकला अन्य भाषाओंकी पत्रकारकलाकी तुलनामें भविष्य का सामना अधिक सफलताके साथ कर सकती है। राज्यका संरक्षण स्वयं ही उसकी उन्नतिके लिए एक प्रबल सहायक है। इसके कई रूप हैं जिनमें एक है मुद्रलेखन (टाइपिंग) तथा कम्पोजिंगके सुधारके लिए आर्थिक सहायता। सरकारी तारघरोंमें हिन्दीके तार स्वीकार ही किये जाने लगे हैं। सम्भव है कि कुछ ही वर्षोंके भीतर हिन्दीमें समाचारोंका प्रेषण नियमित व्यवस्थाकी वस्तु हो जाय। सारे भारतमें हिन्दीके पत्रों व पुस्तकोंकी बिक्री रहती है और अन्य भाषाभाषी क्षेत्रोंमें भी हिन्दीके बड़े केन्द्र विद्यमान हैं, जैसे बम्बई, कलकत्ता और नागपुर। मध्यप्रदेशका उदाहरण लीजिए, जहाँ दो भाषाएँ प्रचलित हैं किन्तु मराठीके केवल दो ही दैनिक निकलते हैं जब कि हिन्दीके चार दैनिक प्रकाशित होते हैं। जैसा कि श्री भटनागर कहते हैं 'अन्य सभी देशी भाषाओंकी अपेक्षा हिन्दीकी पत्रकारकलाका भविष्य सबसे अधिक उज्ज्वल है।"

मान्य देशी भाषाओंके पत्रोंके साथ है। देशी भाषाओंके अमत उन्नतिशील समाचारपत्र जन जागृतिके अनिवार्य एवं अन्यतम भाग हैं, अब धनिकवर्गके पाठकोंकी परवाह न कर समाचारपत्र सामान्य वर्गके

दिया। १९५१ में बम्बईके एक अंग्रेजी दैनिकने, जिसका दिल्लीसे संस्करण भी निकलता था, कलकत्तेसे भी एक संस्करण प्रकाशित करना शुरू कर दिया।* ऐसा समझा जाता है कि मद्राससे भी एक संस्करण निकालनेका उसका इरादा है। ये सब लक्षण अंग्रेजोंके घटते हुए प्रभावके द्योतक नहीं माने जा सकते। अंग्रेजी और अंग्रेजीके पत्रोंके भविष्यके सम्बन्धमें मैं बिल्कुल ही निराशावादी नहीं हूँ।

भविष्यके समाचारपत्र

भारतमें समाचारपत्रोंका भविष्य उज्ज्वल है। अब प्रश्न यह उठता है कि भविष्यमें हमारे समाचारपत्रोंका स्वरूप क्या होगा। सामान्य रूपसे इसका यही उत्तर दिया जा सकता है कि समाचारपत्रोंका वही रूप होगा जो जनता उन्हें देना चाहेगी। जैसा कि समाचारपत्रोंके पाठकोंके सम्बन्धमें अनुसन्धान करनेवाले श्री मार्क एब्रम्सने ब्रिटिश रेडियोपर भाषण करते हुए कहा है, प्रत्येक समाचारपत्र मुख्य रूपसे अपने पाठकोंके विचारों और रुचियोंके अनुसार ही रूप ग्रहण करता रहा है, कर रहा है और आगे भी हमेशा करता रहेगा। या फिर प्रसिद्ध पत्रकार श्री ए. जे. कमिंग्सके शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि "भविष्यके समाचारपत्र वैसे ही होंगे जैसे जनता चाहे कि वे हों। लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रको वैसे ही समाचारपत्र मिलते हैं और वैसी ही सरकार भी जैसे पत्र और जैसी सरकार पानेके योग्य वह हो।" यह अक्सर कही सुनी सी बात जान पड़ती है। ठीक है, पर यह ऐसी सत्य बात है जो अटल है। समाचारपत्रोंका स्तर मानव राष्ट्रके सामाजिक जीवनके स्तरसे भिन्न नहीं हो सकता। कुछ आदमी बड़े अच्छे और उदारमना होते हैं। दूसरे इतने सज्जन और उदार नहीं होते। कुछ ऐसे भी होते हैं जो अन्याय करते हैं और साथियों पर अनुचित प्रभाव डालनेका प्रयत्न करते हैं। इसी तरह समाचारपत्रोंमें भी सामान्य रूपसे ऊँचा स्तर सबल और सर्वत्र नहीं पाया जा सकता।

---

* 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' की ओर संकेत है। हालमें कलकत्तेसे इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया है।

मधातक जनता अभी समझ नहीं सकी है। हालमें ही जब (अपराधोंको उभाड़नेवाले) समाचारपत्रों सम्बन्धी विधेयकको लेकर अखबारवालोंको अकेले ही सरकारसे लोहा लेना पड़ा, तब यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जनताने बहुत ही कम उसका साथ दिया। समाचारपत्रोंका मुँह बन्द करनेवाले इस नये कानूनके विरोधमें जनताने कानी उँगली भी नहीं उठायी। उसने अदबके साथ किन्तु गलत रूपसे यह समझ लिया कि यह तो समाचारपत्रों और सरकारका आपसका युद्धिद्वन्द्व है जिसमें हिस्सा ग्रहण करना उसके लिए अनावश्यक है। भारतके स्वतन्त्र हो जानेके बाद भी ऐसा हुआ, यह बड़े दुःखकी बात है। जनताको स्वयं इस बातकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और उसे भलीभाँति शिक्षा भी दिया जाना चाहिये कि वह उदासीनताका अपना यह भाव छोड़कर स्वतन्त्रताके प्रहरीके रूपमें स्वाधीन एवं सुदृढ समाचारपत्रोंकी स्थापनामें सहायता करे।

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने गृहमन्त्रीकी हैसियतसे इस विधेयकको प्रस्तावित करते हुए कहा था कि यह फसलको नुकसान पहुँचाने वाले पक्षियोंको डरानेके लिए एक उपहास बोखा मात्र है जिससे फसल तैयार करनेवाले किसानोंकी खुद अपनी कोई क्षति न होगी। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि जो समाचारपत्रवाले बेचारे अधिक साहसी नहीं हैं वे भयभीत होकर जनताके प्रति अपना कर्तव्य पालन करनेसे वंचित हो जायँगे। स्वतन्त्र भारतकी लोकतन्त्रात्मक सरकारका ही यह श्रेय प्राप्त है कि उसने यह आपत्तिजनक विधान संविधि-संहिता (स्टैच्यू-बुक) में सम्मिलित कराया। इसका मतलब यह हुआ कि स्वतन्त्र देशमें भी समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रताके लिए भय या खतरा रत्ती भर कम नहीं है। प्रेमकी तरह समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रता भी हर बार नये सिरेसे प्रयत्न कर प्राप्त करनी पड़ती है।

फिर भी यह स्पष्ट है कि लोकतन्त्र प्रणालीमें सरकारको यह बात समझ लेनी चाहिये कि स्वयं लोकतन्त्रके ही हितमें उसका यह कर्तव्य

सम्पन्न और प्रयत्नशील पत्रोंने संसारकी प्रमुख राजधानियोंमें अपने निजी संवाददाता रख छोड़े हैं। इस दिशाकी ओर और अधिक प्रगति होना, जिसके लिए धनकी आवश्यकता है, स्वस्थ विकासका लक्षण होगा। जब तक यह उन्नति हो, तब एक एशियाई देशोंसे प्राप्त समाचारों और पश्चिमी देशोंके समाचारोंमें सन्तुलन बनाये रखनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। आज हमारे पत्रोंमें आमतः एशियाके बहुत कम समाचार प्रकाशित होते हैं। यह एकांगीपन शीघ्र दूर हो जाना चाहिये।

यह सुझाव बड़ी राजधानियोंसे निकलनेवाले या राष्ट्रीय पत्रोंपर विशेष रूपसे लागू होता है। ऐसे समाचारपत्र, अपने राष्ट्रीय स्वरूपके ही कारण स्वभावतः संख्यामें कम होंगे। अधिक बड़ी संख्या तो ऐसे पत्रोंकी होगी जो या तो प्रान्तीय होंगे या जिलों और छोटे शहरोंके पत्र होंगे। जैसा कि मैंने नागपुरमें जून १९५२ में हुए मध्य प्रदेशके श्रमजीवी पत्रकारोंके प्रथम वार्षिक समारोहमें अध्यक्षपीठसे भाषण करते हुए कहा था, मेरा यह पक्का विश्वास है कि भविष्य छोटे समाचारपत्रोंके हाथ है। 'हिन्दू' के मुख्य सहायक सम्पादक, स्वर्गीय श्री के० पी० विश्वनाथ ऐयर मुझसे कहा करते थे कि जिसके समाचारपत्रमें, जिसका क्षेत्र सीमित रहता है और स्थानीय पाठकोंतक पहुँचना ही होता है, समाजकी निकटतम सेवा करनेके लिए विशाल क्षेत्र और अगणित अवसर उपलब्ध हो सकते हैं। अमेरिकामें भी, जहाँ समाचारपत्रोंकी शृंखलाएँ मोटी और लम्बी हैं, छोटे नगरोंके समाचारपत्र अमेरिकन समाचारपत्रोंकी संस्थाके भूतपूर्व सभापति श्री ई० एस फ्रेंडलीके शब्दोंमें "पत्रकारकलाकी वे बुनियादी जड़ हैं जिनसे समाचारपत्रोंके समस्त कार्य को शक्ति और बल प्राप्त होता है।' एक प्रसिद्ध विज्ञापन समितिके उपसभापतिने हालमें ही कहा था कि मैं "बड़े जोरोंसे छोटे नगरोंसे प्रकाशित होनेवाले समाचारपत्रोंके पक्षमें हूँ।' अमेरिकामें जो १७७२ दैनिक पत्र निकलते हैं उनमेंसे लगभग १५०० ऐसे हैं जो ५० हजारसे भी कम आबादीवाले नगरोंसे प्रकाशित होते हैं। गाँवोंसे प्रकाशित होनेवाले ८०

करते हैं कि इस तरहकी आशंका करनेके लिए कोई कारण नहीं है कि समाचारपत्रोंकी ये शृंखलाएँ सारे देशमें फैल जायेंगी और समस्त छोटे छोटे पत्रोंको उसी तरह निगल जायेंगी जिस तरह बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियोंको निगल जाती हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो मेघमालामें विद्युतकी रेखा देखते हुए कहते हैं कि समाचारपत्रोंके ये बड़े-बड़े मालिक पत्रकारोंको अधिक अच्छा वेतन देते हैं जिसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि अन्य छोटे-छोटे मालिकोंपर भी इसका प्रभाव पड़ता है और उन्हें भी पारिश्रमिकमें किञ्चित् वृद्धि करनी पड़ती है। जो भी हो, समाचारपत्रोंकी शृंखलाओंके सम्बन्धमें, जो इस समय विद्यमान हैं, हमें इस तरह भयभीत न हो जाना चाहिये कि हमारा ध्यान भारतीय समाचार पत्रोंकी वास्तविक समस्याओंकी तरफसे हट जाय।

देशमें चारों तरफ फैले हुए छोटे-छोटे समाचारपत्रोंकी स्थापनाके सम्बन्धमें मैंने जो कल्पना की है, उसके पूर्ण होनेमें सस्ते अखबारी कागज की अधिक उपलब्धि होनेसे विशेष सुविधा होगी। आज हमें प्रति वर्ष कोई ९० हजार टन अखबारी कागजकी आवश्यकता पड़ती है, जो सबका सब हमें बाहरसे मँगाना पड़ता है। समाचारपत्रोंकी वृद्धिके साथ साथ अखबारी कागजकी खपत भी बढ़ती जायगी पर उसी तरह निश्चित है जिस तरह दिनके बाद रातका होना। कुछ लोगोंने अखबारी कागज को लोकतन्त्रका 'कच्चा माल' माना है और यह ठीक ही है। इस बातकी चेष्टा करना सरकारका तथा उद्योगपतियोंका कर्तव्य होना चाहिये कि वह कच्चा माल पर्याप्त परिमाणमें समाचारपत्रोंको प्राप्य हो सके।

यहाँ मैं मध्यप्रदेशीय सरकारकी सहायतासे खोले जानेवाले उस कार खानेकी थोड़ी-सी चर्चा कर देना चाहता हूँ जिसमें प्रतिदिन १० टन (२७२५ मन) अखबारी कागज तैयार किया जायगा। इसमें लगभग ६ करोड़ रुपये खर्च बैठेगा। इस नेपा मिल्ससे हमारी वर्तमान आवश्यकताके लगभग तृतीयांशकी पूर्ति हो सकेगी। सन् १९५४ के उत्तरार्द्धमें इसका उत्पादन शुरू हो जानेकी आशा है। मेरा आग्रह है कि

सामने नहीं आया है। मैं केवल यही आशा कर सकता हूँ कि रिपोर्टपर शीघ्र ही विचार किया जायगा।

पत्रकारकलाकी शिक्षामें मेरा पक्का विश्वास है। वे लोग भी जो यह दलील दिया करते हैं कि समाचारपत्र-कार्यालयमें ही पत्रकारोंको सबसे अच्छी शिक्षा प्राप्त की जा सकती है, इस बातमें सहमत होंगे कि हिस्लॉप कालेजकी योजनामें जो शिक्षाक्रम रखा गया है उससे कार्यकर्ताओंकी दक्षतामें काफी वृद्धि हो जायगी। श्री एन रघुनाथ पेयरने तो, जिन्होंने हिस्लॉप कालेजके शिक्षाक्रमका उद्घाटन किया था, यहाँतक कहा था कि पत्रकारोंकी शिक्षा उन आधारभूत सांस्कृतिक क्रियाकलापोंमें गिनी जानी चाहिये जिनसे नये समाजका निर्माण होता है। ऐसे सुयोग्य और काम क्षम कार्यकर्ताओंका दल तैयार करना जो लोकतन्त्र शासनप्रणालीके अन्तर्गत स्वतन्त्र समाचारपत्रोंकी भारी जिम्मेदारियाँ अच्छी तरहसे और सचाईके साथ पूरी कर सकें बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है।

भभिपदों (सिण्डिकेट्स) की स्थापना

लघु कथायें विशेषलेख, व्यङ्ग्यचित्र तथा विनोद चित्रावली (कामिक स्ट्रिप) उपलब्ध करनेके लिए अभिपदोंके विकासकी ओर भी ध्यान दिया गया है। क्षेत्रीय समाचारपत्रोंकी उन्नति होने पर, जिनके महान् भविष्यकी आशा मैं कर रहा हूँ, इन अभिपदोंकी सेवाकी आवश्यकता होगी और इनके निर्माताओंको उनसे भी अच्छी सहायता मिलेगी। क्षेत्रीय समाचारपत्रोंके पास इतना पैसा तो हो नहीं सकता कि वे दिनभर काम करनेवाले कर्मचारी रखकर कथा-कहानी सामयिक लेख आदि तैयार करावें। ये चीजें उन्हें किसी केन्द्रीय संस्था या ऐसी संस्थाओंसे प्राप्त हो सकती हैं जो इस तरहकी सामग्री तैयार करनेके लिए विशेषज्ञोंसे काम ले सकती हैं। व्यङ्ग्य चित्र तथा विनोद चित्रावलीके सामने भाषा सम्बन्धी बाधायें टिक नहीं सकतीं, अतः उनके ग्राहक सारे देशमें मिल सकते हैं। किसी विशेष भाषाके क्षेत्रके लिए अभिपदको उस क्षेत्रकी भाषामें ही सामग्री फिरसे

समाचारपत्र "अभी कई युगोंतक अधिक शक्तिशाली बना रहेगा, क्योंकि वह दोनोंमें श्रेष्ठ है।"

इसके साथ मैं यह भी जोड़ देना चाहता हूँ कि समाचारपत्र केवल इसीलिए अधिक शक्तिशाली न बना रहेगा कि वह दोनोंमें श्रेष्ठ है, वरन् इसलिए भी कि वह पाठकोंको विशेष सुविधाएँ और विशेष काम प्रदान करता है। रेडियो सुननेवालोंको प्रसारणके समय और सुननेके स्थानके अनुसार अपना प्रबन्ध करना पड़ता है, किन्तु पाठक जहाँ चाहे वहाँ अपना अखबार ले जा सकता है, जब अवकाश हो तब उसे पढ़ सकता है और जो हिस्सा उसे अधिक पसन्द हो उसे दुबारा भी पढ़ सकता है। 'रेडियो समाचारपत्र' नामक चीजके चल पड़ने और उसके सम्भावित विकाससे भी स्थिति में परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि समाचारपत्र अधिक सामग्री और अधिक प्रकारकी सामग्री दे सकता है।

फिर भी यह सच है कि इस युगमें जब समाचारोंका शीघ्रसे शीघ्र पहुँचाना अधिक महत्त्वकी चीज है तब इस काममें रेडियो कभी-कभी समाचारपत्रसे बाजी मार ले जाता है। परन्तु इस तरह कभी कभी रेडियो से विजय जानेका भी यह उलटा परिणाम होता है कि पाठककी भूख बढ़ जाती है और वह किसी महत्त्वपूर्ण घटनाके घटित होनेपर उसका अधिकाधिक ब्यौरा फुरसतके समय अपने प्रिय पत्रमें पढ़ना चाहता है। यह भ्रम कि रेडियो तथा समाचारपत्र दो प्रतिद्वन्द्वी वस्तुएँ हैं, बहुत पहले ही दूर किया जा चुका है।

सबसे हालके सरकारी आँकड़ोंके अनुसार भारतमें इस समय कुल ६,९८,९८ अनुज्ञाप्राप्त रेडियो सेट हैं और ११२ की जनसंख्याके अनुसार देशकी कुल आबादी ३५६ करोड़ है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक ५ व्यक्तियोंके पीछे एक रेडियो सेट यहाँ है, जब कि अमेरिकामें ९८ प्रतिशतसे भी अधिक परिवारोंके पास अपने अपने रेडियो हैं।

यहीं भी बड़ी-बड़ी सम्भावनाओंका क्षेत्र सामने आता है। निरक्षरता जो हमारे देशमें एक बड़ी दरार है, रेडियोके प्रयोगमें बाधक नहीं,

दिया गया हो। भारतमें लोकमत साधारणः इस पक्षमें है कि उसे ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन जैसा रूप दे दिया जाय। अमेरिकाकी तरह उसे निजी व्यापारिक उद्यम बना देनेकी ओर यहाँ बहुत कम उत्साह है। सार्वजनिक निकायके रूपमें बीचका रास्ता ही यहाँ ज्यादा पसन्द किया जाता है।

सरकारी मत इस आदर्श एवं अन्तिम लक्ष्यको मान लेनेके पक्षमें है किन्तु सरकारका ख्याल है कि आल इण्डिया रेडियोको सार्वजनिक निगमके हाथ सौंप देनेका उचित समय अभी नहीं आया है। कारण यह है कि हस्तान्तरण होनेके पहले उसका और अधिक स्थिर आर्थिक आधारपर प्रतिष्ठित हो जाना आवश्यक है। इस दृष्टिकोणमें आवश्यकतासे अधिक सावधानता देख पड़ती है। जो हो, अखिल भारतीय रेडियोपरसे सरकारी नियन्त्रणका उठा लिया जाना अब अधिक समयतक रोका नहीं जा सकता।

भारतके समाचारपत्रोंने बहुत उन्नति तो नहीं की है किन्तु उनका इतिहास महान् है। उस महान् इतिहासके पक्षमें एक प्रमाण उस व्यक्तिका कथन है जो समाचारपत्रोंकी तीव्र आलोचनाका निरन्तर लक्ष्य बना रहा। वाइसराय लार्ड लिनलिथगोने केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाके सामने विदाईका भाषण करते हुए इस महती संस्थाकी—समाचारपत्रोंकी—प्रशंसा की, उसकी पक्षपात-हीनताके लिए, जनताकी सेवा करनेकी उसकी उत्सुकताके लिए और पत्रकारकलाकी सर्वोच्च परम्पराका अनुसरण करने एवं सम्भव हो तो उसमें सुधार करनेकी उसकी चिन्ताके लिए। उन्होंने कहा कि "मैं सार्वजनिक रूपसे भारतीय पत्रोंकी और उन बुद्धिमान्, परिश्रमी एवं सुयोग्य आदमियोंकी प्रशंसा किये बिना भारत छोड़ना पसन्द न करूँगा, जो समाचारपत्रोंमें काम करते हुए भारतकी इतनी अच्छी सेवा करते रहे हैं।"

विदेशी सरकार, जिसकी सत्ता मुख्य रूपसे देशी सेनाके सहारे कायम हो, समाचारपत्रोंको स्वतन्त्र नहीं रहने दे सकती। मद्रासके गवर्नर सर

इस बारेमें सन्देह ही है कि राजनीतिक विचारोंपर किसी भी पत्रका कोई भारी प्रभाव हो।" इसके प्रमाणमें अमेरिकाके तथा भारतके चुनावोंके परिणामोंकी बात कही जाती है और इस आधारपर यह निष्पत्ति निकाली जाती है कि समाचारपत्रोंकी लोकप्रियता घट रही है।

अब, इसका उत्तर तो यही हो सकता है कि समाचारपत्रका काम 'समाचारपत्र छापना ही है चुनाव जीतना नहीं—जैसा कि कंसस सिटी 'स्टार' पत्रके श्री रॉय रावट् सने बड़े अच्छे ढंगसे कहा था। पुलित्जर प्राइज (पारितोषिक) के जीतनेवाले श्री फ्रैंक एल. मॉट्ने 'दि रोटेरियन' के हालके एक अंकमें इस प्रश्नकी चर्चा करते हुए कहा है कि समाचार पत्र चुनावके परिणामोंका नियन्त्रण नहीं करते, इस आधारपर यह निष्पत्ति निकालना हास्यास्पद होगा कि उन्होंने जनताका विश्वास खो दिया है। समाचारपत्रोंको प्रखर संस्थाएं स्थिर भावसे बढ़ि होते चलना ही प्रभाव घटनेकी बातपर जोर देनेवाली आलोचनाका प्रभावकारी जवाब है।

पत्रोंके अधिक प्रचारको भी यह कहकर आलोचना की गयी है कि यह एक तरहका व्यापारवाद है, जो शुद्ध और पवित्र पत्रकारीको दूषित बना देता है। कहा जाता है कि लन्दनके 'डेलीमेल' के श्री केनेडी जोन्सने यह बात कही थी कि पत्रकारी पहले तो एक पेशा थी किन्तु अब यह व्यापारका एक अंग है। डाक्टर श्री आर. अम्बेडकरने एक बार कहा था कि समाचारपत्रके कार्यालय और साबुनके कारखानेमें कोई अन्तर नहीं। अन्य लोगोंका कहना है कि यह इससे भी बुरी चीज है, क्योंकि यह मनुष्यको बहकाकर कुमार्गपर ले जाता और उसके मनको विषाक्त बना देता है, जब कि यह ऐसी कोई बात नहीं करता।

जो हो व्यापारवादका आना तो अनिवार्य है। और यदि व्यापारिक उन्नसे खतरा नहीं बढ़ने पाता तो इसका कारण यह है कि ईमानदारी ही सबसे अच्छी नीति है। जैसा कि समाचारपत्रों सम्बन्धी आयोगके सदस्य डाक्टर सी॰ पी रामस्वामी ऐयरने बाणकोर विश्वविद्यालयकी सभा

यहाँके नागरिकोंको लोकतन्त्रके पथपर अग्रसर होनेवाले स्वतन्त्र भारतके अधिक विस्तृत जीवन और क्रियाकलापोंमें अपना उचित हिस्सा ग्रहण करनेके लिए शिक्षित करनेमें सहायता करें।

सन् १९५० में अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलनका जो वार्षिक अधिवेशन दिल्लीमें हुआ था, उसमें भाषण करते हुए प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरूने समाचारपत्रोंसे अनुरोध किया था कि वे 'जीवनमें जो कुछ निकृष्ट है उसका प्रसार यहाँसे जाना रोकनेमें सहायता करना अपना कर्तव्य समझें और अधिक ऊँचे स्तरकी तथा अधिक उत्तम सामाजिक चेतनाके निर्माणमें ही सहायता न करें वरन् जीवनकी छोटी छोटी बातोंमें सामाजिक व्यवहार करना सिखानेमें भी।"

जिस महान् कर्तव्यका भार प्रधान मन्त्रीने भारतीय समाचारपत्रोंपर डाला है, उसे पूरा करनेकी शक्ति, क्षमता और इच्छा उनमें मौजूद है और मुझे इस बातका निश्चय है कि यहाँके समाचारपत्र वह सुखद स्थिति प्राप्त करनेमें भारतकी सहायता करेंगे जिसकी कामना स्वर्गीय श्रीरवीन्द्र नाथ ठाकुरने की थी—

जहाँ मनमें कोई भय नहीं रहता और मस्तक ऊँचा उठा रहता है
जहाँ विद्या या ज्ञान निःशुल्क प्राप्त किया जा सकता है

जहाँ मनको तुम अधिकाधिक विस्तीर्ण होते जानेवाले विचार और कर्मकी ओर ले जाते हो,
स्वतन्त्रताके उस स्वर्गमें, मेरे पिता, मेरा यह देश जागरित हो।

ALI UL-HASHMI CHOUDHI HAHM. *Art of Writing* Delhi : Anjuman Taraqqi-i-Urdu, (Hind) 1943 237 pp (In Urdu)

ARPOTHASWAMY *Principles f Journali m.* Trichur Mangalodayam Press, 1941 65 pp (In Malayalam)

BANNERJEE, RAJINI. *Romance of Journalism* Calcutta Industry 1947 163 pp

BOSE, MRINAL KANTI. *The Press a d Its Problems.* Calcutta : Sarkar 1945 162 pp.

DHARA R. *Jo rnalism* Calcutta : Industry 1925 136 pp

GUNDAPPA, D V *The Press in Mysore* Bangalore City Karnataka, circa 1940. 54 pp.

IYENGAR, A. RANGASWAMI. *Newspaper Press n India* Bangalore City Bangalore Press, 1933 60 pp.

LOVETT PAT *Journalism in India,* Calcutta Hanna, circa 1928. 86 pp.

MYERS, ADOLPH. *How to be a Journalist* Bombay The Times of India Press, circa 1926 161 pp

PILLAI, K. RAMAKRISHNA *Journalism.* Trichur : Mangalodayam Press, 1928. Second Edition 318 pp (I Malayalam)

RAO, P G *F mous Indian Journalist and Journalism.* Part I. Bombay V R P abhu Kanara Books and News Agency Undated 57 pp.

SASTRI, C L. R *Journalism.* Bombay Thacker 1941 283 pp.

SRINIV SAN O B *Press ad Public* T i andrum : University of Tra ancore, 1944. 78 pp

इतिहास सम्बन्धी

१ श्री राधाकृष्णदास—हिन्दी समाचारपत्रोंका इतिहास, काशी, १८९४

२ श्री बालमुकुन्द गुप्त—हिन्दी संवादपत्रोंका इतिहास, बालमुकुन्द गुप्त ग्रन्थावली, कलकत्ता ।

३ पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—'समाचारपत्रोंका इतिहास', काशी, ज्ञानमण्डल, १९५४, पृ० ३११

४ श्री विनायककृष्ण जोशी तथा श्री रामचन्द्र केशव लेले—समाचारपत्रोंका इतिहास, बम्बई मुंबापुरी पब्लिकेशन्स, १९५१, जिल्द १, पृ० ५६२ (मराठीमें) ।

रिपोर्टिंग

श्री श्रीपद रामचन्द्र टिकैकर—आत्मीयार, बम्बई, न्यू भारत १९३४, पृ० २७१ (मराठी में)

पत्रकारोंकी वृत्ति या पेशे सम्बन्धी

Journalism as a Career New Delhi Careers Institute, 1951. 41 pp.

RAU ABDUL-MAJID. *Journalism as a Career* Lahore Commercial Book, circa 1937 138 pp

Report of the Newspaper Industry Enquiry Committee Central Provinces and Berar Nagpur Government of the Central Provinces and Berar circa 1948, 32 pp.

UMRIG R. K. D *Lest I Forget.* Bombay Popular Book Depot, 1949 148 pp.

विविध विषयक

NARASIMHAN V K. and PHILIP POTHEN, Editors. *The Indian Press Year Book.* Madras Indian Press Publications. Annually since 1948

MAGAZINE JOURNALISM

BIRD, GEORGE L *Article Writing and Marketing* New York: Rinehart, 1948

PATTERSON HELEN *Writing and Selling Feature Articles.* New York Prentice-Hall, 1949

WOLSELEY ROLAND E. *The Magazine World* New York Prentice-Hall, 1951

NEWS REPORTING AND WRITING

CAMPBELL LAURENCE R. and WOLSELEY ROLAND E *Newsmen at Work* Boston Houghton Mifflin, 1949

MACDOUGALL, CURTIS D *Interpretative Reporting* New York Macmillan, 1948

WARREN CARL *Modern News Reporting* New York Harper, 1951

SUB-EDITING

BASTIAN GEORGE C and CASE, LE AND D *Editing the Day News* New York Macmillan 1943

MANSFIELD F J *Sub Editing* London Pitman, 1946

NEAL, ROBERT *Editing the Small City Daily* New York: Prentice Hall, 1946

SUTTON ALBERT A *Design and Makeup of the Newspaper* New York Prentice-Hall, 1948.

MISCELLANEOUS

FLESCH, RUDOLF *The Art of Plain Talk* New York Harper, 1946

FLESCH RUDOLF *The Art of Readable Writing.* New York Harper 1949

WARREN CARL *Radio News Writing and Editing* New York Harper 1947

Willing's Press Guide London, Willing's Press Service, Ltd. Annually

Writers and Artists Year Book London Adam and Charles Black Annually

विभिन्न पत्रोंमें प्रायः लिखते रहते हैं और इस उद्योगके ऊँचे प्रतिष्ठानोंके वे प्रतिरक्षक हैं।

श्री डाम फर्नैण्डीज दो दशाब्दोंसे भी अधिक समयसे भारतीय समाचारपत्र-जगत्‌में काम करते रहे हैं। सन् १९३१ में उन्होंने 'असोशियेटेड प्रेस आफ इण्डिया'के रिपोर्टरकी हैसियतसे काम शुरू किया—संयुक्त प्रान्तकी सरकारकी राजधानी लखनऊ तथा नैनीतालमें स्थित उसके संवाददाताके रूपमें। चार वर्ष बाद उन्हें कानपुरमें रायटरकी शाखाके संघटनका काम सौंपा गया। सन् १९३९ में उनका स्थानान्तरण हैदराबादको हो गया, जहाँ वे निजाम सरकारकी राजधानीमें रहनेवाले रायटरके एजेण्ट नियुक्त हुए। १९४४ में वे असोशियेटेड प्रेसके प्रभारी सम्पादकके रूपमें बम्बईके प्रधान कार्यालयमें चले गये। १९४७ में उनका तबादला दिल्लीको हो गया जहाँ उन्हें सर उषानाथ सेनकी अधीनतामें, भारत सरकारकी राजधानीमें, स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद बदली हुई स्थितिके अनुरूप शाखा कार्यालयका संघटन करना पड़ा। सन् १९५० में सर उषानाथके अवकाश ग्रहण कर लेने पर श्री फर्नैण्डीज दिल्ली-कार्यालयके प्रधान बन गये। इस समय वे इसी पदपर काम कर रहे हैं। श्रमजीवी पत्रकारोंके संघटनोंमें वे सक्रिय रूपसे हिस्सा लेते रहे हैं। दिल्लीमें वे अखिल-भारतीय पत्रकार सम्मेलनके प्रथम अधिवेशनके संघटनकर्ताओंमेंसे एक थे। श्रमजीवी पत्रकारोंके भारतीय संघकी स्थापनाके बादसे वे उसके कोषाध्यक्ष रहे हैं।

श्री पी० एन० मेहता बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेडके डाइरेक्टर (संचालक) हैं। 'टाइम्स आफ इण्डिया', 'दि इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया' तथा अन्य प्रकाशनोंका स्वामित्व इसी कम्पनीके हाथमें है। वे प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया तथा यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डियाके भी डाइरेक्टर हैं। पत्रकारी सम्बन्धी कानूनोंमें विशेष अभिरुचि होनेके कारण उन्होंने 'प्रेस लॉज इन इण्डिया' नामक पुस्तक भी लिखी है। कम्पनी कानूनका भी अच्छा अध्ययन होनेके कारण उन्होंने इस विषयपर भी कई जिल्दोंमें पुस्तक लिखी है और एक पुस्तक 'पार्लियामेण्ट एण्ड

जब उन्होंने इस पुस्तकका १६ वाँ परिच्छेद लिखा था, तब वे भारतीय सम्पादक सम्मेलनकी मध्यप्रदेशीय शाखाके सभापति थे। उन्होंने पत्रकारीका काम सन् १९२१ में लाहौरके पत्र 'इम्पीरियल टाइम्स' के सहायक सम्पादककी हैसियतसे शुरू किया। दो वर्ष बाद वे नागपुर 'डेलीन्यूज' के सहायक सम्पादक बने। जब यह नागपुरका (पदका) 'टाइम्स' बन गया, तब वे उसके सम्पादक घोषित हुए। सन् १९४२ में जब पत्रका प्रकाशन स्थगित हो गया, तब उन्होंने अमेजीके दैनिक 'हिन्दुस्तान हेरल्ड' की स्थापना की। सन् १९४८ में वे नये नागपुर 'टाइम्स' के सम्पादक नियुक्त हुए। नागपुरमें वे १९४९ से ही 'हितवाद' के विशेष संवाददाता रहे हैं। सन् १९४६ में नागपुर विश्वविद्यालयने पत्रकार कलामें उपाधिपत्र देनेके लिए शिक्षाक्रम आदिकी योजना तैयार करनेके लिए जो कमेटी नियुक्त की थी, उसके आप संयोजक बनाये गये और उस कमेटीमें भी, जो १९४० में भारतीय सम्पादक सम्मेलनने पत्रकार कला-विधायकके सम्बन्धमें रिपोर्ट तैयार करनेके लिए बनायी थी। उन्होंने फ्री प्रेस जर्नल, हिन्दुस्तान टाइम्स, नेशनल हेरल्ड, साउथ इण्डियन कर्माशियल आदि पत्रोंमें कितने ही लेख लिखे हैं।

श्री स्वामिनाथ नटराजन, 'बाम्बे क्रानिकल' के सम्पादक हैं। वे 'इण्डियन सोशल रिफार्मर' के सम्पादककी हैसियतसे भी प्रसिद्ध काम कर चुके हैं, जो उनके पत्रकार पिता श्री कामाक्षी नटराजन् द्वारा स्थापित किया गया था। यह पत्र उस समय बन्द हो गया था जब उन्होंने इस पुस्तकके लिए आठवाँ परिच्छेद लिखा। एक वर्षसे भी अधिक समय तक वे 'फ्री प्रेस जर्नल' के सम्पादक रहे और सन् १९४९ से 'बाम्बे क्रानिकल' का सम्पादन करते रहे हैं। उन्होंने कई पुस्तकें तथा भारतीय प्रश्नोंपर कई आकर्षक पुस्तिकाएँ भी लिखी हैं। वे अमरिका भी हो आये हैं।

श्री हमरी सैम्युल इस समय 'टाइम्स ऑफ इण्डिया न्यूज सर्विस' के दिल्ली कार्यालयके प्रधान हैं किन्तु कई वर्षों तक वे इंडिया सम्बन्धी

लन्दनसे इस विषयमें एम. ए. की उपाधि प्राप्त की थी और लन्दन विश्व विद्यालयसे भी इस विषयका उपाधिपत्र प्राप्त किया था। देशका विभाजन हो जानेके बाद उन्होंने नयी दिल्लीमें पंजाब विश्वविद्यालयके अन्तर्गत पत्रकारकला विभागकी स्थापना की और अभीतक उसके प्रधान तथा प्राध्यापककी हैसियतसे काम कर रहे हैं। सक्रिय पत्रकारके रूपमें काम करते समय प्रो० संल्ग सिंह अन्तर्राष्ट्रीय समाचार समितिके विशेष संवाददाता और 'पायोनियर'के उपसम्पादक रहे हैं। कुछ समयतक आप उत्तरप्रदेशीय सरकारके सूचना विभागकी अंग्रेजी शाखाके प्रधान तथा सम्पादक मण्डलके अध्यक्ष थे। आपने 'नेशनल हेरल्ड', 'दि ट्रिब्यून', 'इण्डियन न्यूज क्रानिकल' तथा 'भारत', 'प्रताप', 'विश्वबन्धु', सुधा', 'माधुरी', 'चाँद', और 'भविष्य'में कितने ही लेख लिखे हैं।

श्री एस एन शिवरमण मद्राससे निकलनेवाले तामिल भाषाके दैनिकपत्र 'दिनमणि' के सम्पादक हैं, अत अपने लेखमें आपने स्वभावतः तामिल पत्रोंकी स्थितिका विशेष रूपसे वर्णन किया है। भारतीय पत्रकार कलाकी इस महत्त्वपूर्ण शाखाके विकासकी अपनी अलग विशेषता है। वे इस क्षेत्रमें सन् १९२९ में प्रविष्ट हुए, तामिल नाडु' नामक दैनिक पत्रके उप-सम्पादक बनकर। शीघ्र ही उन्होंने वहाँसे पदत्याग कर दिया और नमक सत्याग्रहमें सम्मिलित हुए जिसमें उन्हें कारावासकी सजा हुई। सन् १९३२ में वे द्विदैनिकपत्र 'गान्धी के व्यवस्थापक तथा सहायक सम्पादक नियुक्त हुए। सन् १९३४ में वे 'दिनमणि'मे प्रथम श्रेणीके उप सम्पादक बने और फिर सहायक सम्पादक, कार्यकारी सम्पादक तथा सम्पादक भी बने। बीचमें केवल दो वर्षके लिए उन्होंने मद्रासके 'इण्डियन एक्सप्रेस में प्रधान सहायक सम्पादककी तरह काम किया। सन् १९४० मे उन्होंने भारतीय सम्पादकोंके एक दलके साथ 'मध्यपूर्व' तथा मध्य भूमध्य सागरीय युद्धक्षेत्रका दौरा किया। उन्होंने सैनफ्रैंसिस्कोमें हुए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनके समय 'एक्सप्रेस' समूहके पत्रोंके विशेष संवाद दाताकी हैसियतसे काम किया और सन् १९४६ में फिर विभिन्न स्थानों

रूपसे इस विषयमें एम ए. की उपाधि प्राप्त की थी और लन्दन विश्व विद्यालयसे भी इस विषयका उपाधिपत्र प्राप्त किया था। देशका विभाजन हो जानेके बाद उन्होंने नयी दिल्लीमें पञ्जाब विश्वविद्यालयके अन्तर्गत पत्रकारकला विभागकी स्थापना की और अभीतक उसके प्रधान तथा प्राध्यापककी हैसियतसे काम कर रहे हैं। सक्रिय पत्रकारके रूपमें काम करते समय प्रोफेसर सिंह अन्तर्राष्ट्रीय समाचार समितिके विशेष संवाददाता और 'पायोनियर'के उपसम्पादक रहे हैं। कुछ समयतक आप उत्तरप्रदेशीय सरकारके सूचना विभागकी अंग्रेजी शाखाके प्रधान तथा सम्पादक मण्डलके अध्यक्ष थे। आपने 'नेशनल हेरल्ड', 'दि ट्रिब्यून', 'इण्डियन न्यूज क्रानिकल' तथा 'भारत', 'प्रताप', 'विश्वबन्धु', 'सुधा', 'माधुरी', 'चाँद', और 'भविष्य'में कितने ही लेख लिखे हैं।

श्री एस एन शिवरमय्य मद्रासमे निकलनेवाले तामिल भाषाके दैनिकपत्र 'दिनमणि' के सम्पादक हैं, अतः अपने लेखमें आपने स्वभावतः तामिल पत्रोंकी स्थितिका विशेष रूपसे वर्णन किया है। भारतीय पत्रकार कलाकी इस महत्वपूर्ण शाखाके विकासकी अपनी अलग विशेषता है। वे इस क्षेत्रमें सन १९२९ में प्रविष्ट हुए, 'तामिल नाडु' नामक दैनिक पत्रके उप सम्पादक बनकर। शीघ्र ही उन्होंने वहाँसे पदत्याग कर दिया और नमक सत्याग्रहमे सम्मिलित हुए जिसमें उन्हें कारावासकी सजा हुई। सन् १९३२ में वे द्विदैनिकपत्र 'गान्धी के व्यवस्थापक तथा सहायक सम्पादक नियुक्त हुए। सन् १९३४ म वे 'दिनमणि'में प्रथम श्रेणीके उप सम्पादक बने और फिर सहायक सम्पादक, कार्यकारी सम्पादक तथा सम्पादक भी बने। बीचमें केवल दो वर्षके लिए उन्होंने मद्रासके 'इण्डियन एक्सप्रेस' में प्रधान सहायक सम्पादककी तरह काम किया। सन् १९४८ में उन्होने भारतीय सम्पादकोंके एक दलके साथ 'मध्यपूर्व' तथा मध्य भूमध्य सागरीय युद्धक्षेत्रका दौरा किया। उन्होंने सैनफ्रैंसिस्कोमें हुए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनके समय 'एक्सप्रेस' समूहके पत्रोंके विशेष संवाद दाताकी हैसियतसे काम किया और सन् १९४९ म फिर विभिन्न स्थानों

प्रबन्ध-सम्पादक और सम्पादक रह चुके हैं। उनके लेख १०० से अधिक अमेरिकन, ब्रिटिश, भारतीय तथा आस्ट्रेलियन पत्रोंमें निकल चुके हैं, जिनमेंसे कुछ पत्रोंके नाम ये हैं—सैटरडे रीव्यू ऑफ लिटरेचर, न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून, कोरोनेट, क्रिश्चियन साइंस मानीटर। अंग्रेजीके बहुतसे पत्रकारकला सम्बन्धी प्रकाशनोंमें भी वे लिखते रहे हैं। उन्होंने नौ पुस्तक या तो अकेले ही लिखी हैं या अन्य लेखकोंके साथ मिलकर जैसे 'दि मैगजीन मार्केट', 'एक्सप्लोरिंग जर्नलिज्म', 'न्यूजमेन ऐट वर्क' इत्यादि। उन्होंने सिराक्यूज, नार्थवेस्टर्न तथा अन्य विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयोंमें पत्रकारकलाकी शिक्षा देनेका काम किया है। भारतमें निवास करते समय प्रोफेसर बुस्सलेने प्रमुख पत्र पत्रिकाओंके अनेक कार्यालयोंका परिदर्शन किया और अमृत बाजार पत्रिका, स्टेट्समैन, भारत ज्योति, बाम्बे क्रानिकल, लीडर, हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, नेशनल हेरल्ड आदि पत्रोंमें लेख लिखे। अपने पत्रकार जीवनमें उन्होंने सार्वजनिक सम्पर्क विभाग प्रवचन-कार्य, यों वर्ष अमेरिकन निगमोंके लिए तथा शैक्षणिक एवं धार्मिक समूहोंके लिए किया अनेकास्य प्रचार आदि विभिन्न कार्योंमें संलग्न रहकर कई वर्षोंका अनुभव प्राप्त किया है।
